वर्ष ८, अंक १०

श्रीकृष्णाय नमः

अषाढ पूर्णिमा १९९१

वार्षिक चन्दा ३)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना, वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) या इससे अधिक देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिए।

भक्ति के संरक्षक और सहायक

राव श्रीराम जी रईस नांगल	१२५)
भक्त नन्दकिशोर जी चखी दादरी	१२१)
ला० गोपालदास जी रईस लाहौर	१११)
धर्म सिंह मावजी जेठवा कोलरीप्रोप्राइटर झरिया	१२०)
आनरेबिल ला० गोकलचन्द जी नारंग वज़ीर लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट लाहौर	१०१)
बाई पदामो देवी पुत्री लाला गनशालाल चखीदादरी	१०१)
श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी	१०१)
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई रामपुरा	५१)
चौधरी शिवसहाय जी कोसली	५१)
लाला श्यामलाल जी कपूर दिल्ली	५१)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास	२५)
डाक्टर कुवेरभाई नारायणभाई देसाई महुधा जिला कैरा	२५)
पण्डित पन्नालाल जी तोपखाना नं० ५ अम्बाला	२५)
चौधरी उमराव सिंह पहाड़ी धीरज दिल्ली	१५)
पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली	५)
जमादार दीपचन्द जी	५)
मंगलसिंह गनर नं० ५ तोपखाना अम्बाला	५)

विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश	... ...	२८९
२.	पुराणगाथा [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी	... ...	२९०
३.	भिक्षा (कविता) [रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भ० भ० आश्रम	... ...	२९४
४.	श्री भगवच्चर्चा [रचयिता श्री स्वामी भोले बाबा जी	... ...	२९५
५.	दर्शन-परिचय [ले० पं शिवनारायण जी शास्त्री	... ...	२९७
६.	रकार रामचन्द्र है० (कविता) [रचयिता श्री १०८ बाबा रघुनाथ दास जी	... ...	३०१
७.	दो मार्ग [ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भ० भ० आश्रम	... ...	३०२
८.	निज आयुध भुजचारी [ले० श्री महावीर प्रसाद जी बास्तव	... ...	३०४
९.	भारत को गिरते देखो (कविता) [रचयित्री श्रीमती बृजकुमारी 'प्रभाकर' आश्रम	...	३०९
१०.	एक चमत्कारी बेनजीर नुस्खा [ले० श्री मक्खन मथुरा प्रसाद जी	... ...	३०९
११.	हरि नाम ही सार है [ले० श्री महात्मा राम भ० भ० आश्रम	... ...	३११
१२.	कन्या गुरुकुल [ले० श्री स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती	... ...	३११
१३.	मोहनी मूर्ति [कविता] [रचयिता पं बाबू लाल भार्गव साहित्य रत्न	... ...	३१४
१४.	खुदाई हुक्म ले० श्री महात्मा सच्चानन्द आनन्द कन्द भ० भ० आश्रम	... ...	३१४
१५.	योग साधन [ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती	... ...	३१६
१६.	प्राप्ति स्वीकार [ले० श्री सम्पादक	... ...	३१९
१६.	प्रार्थना भजन [संग्रहकर्ता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भ० भ० आश्रम	... ...	३२०

अघासुर-उद्धार

अघ अजगर बनि ब्रज बस्यौ बैठ्यौ बदन पसार ।
पैठत तेहि गो-गोपगन जिय गिर-गुहा बिचार ॥

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ८ } श्रीभगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, आषाढ़ पूर्णिमा, जून १९३४ { अंक १० पूर्ण संख्या ९४

वेदोपदेश

विश्वर्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उतवा सजातान्।
नान्या युवत् प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्ती मतक्षम्॥ १॥

हे इन्द्र और अग्नि, मैं धनकी इच्छा करके तुम लोगों को ज्ञाति वा बन्धु की तरह जानता हूं। तुमने ही मुझे प्रकृष्ट बुद्धि दी है, अन्य किसी ने भी नहीं, फलतः मैंने ध्यान निष्पन्न और अन्नेच्छा सूचक स्तुति, तुम्हें लक्ष्य कर, की है॥ १॥

अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्॥ २॥

इन्द्र और अग्नि, तुम लोग अयोग्य जामाता अथवा श्यालक की अपेक्षा भी अधिक, बहुविध, धनदान करते हो ऐसा सुना है। इसलिये, हे इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे सोम प्रदान काल में पठनीय एक

नया स्तोत्र निष्पादन करता हूं ॥ २ ॥

युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
ताविश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ३ ॥

इन्द्र और अग्नि, तुम्हारे लिये दीप्तिमती प्रार्थना की कामना करके तुम्हारे हर्ष के लिये सोम रस का अभिषव करते हैं। तुम अश्वसम्पन्न शोभन बाहु-युक्त और सुपाणि हो। तुम लोग शीघ्र आकर उदकस्थ माधुर्य द्वारा हमारा सोम रस संयुक्त करो ॥ ३ ॥

आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्मां इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ४ ॥

वज्रहस्त-इन्द्र और अग्नि, धन ले आओ, हमें दो, और कार्यद्वारा हमारी रक्षा करो। सूर्य की जिन रश्मियों के द्वारा हमारे पूर्व पुरुष इकट्ठे हुये थे, वे ये ही हैं ॥ ४ ॥

पुरन्दरा शिक्षतं वज्रहस्तास्मां इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

वज्रहस्त पुरन्दर इन्द्र और अग्नि, धन दान करो। लड़ाई में हमें बचाओ। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और आकाश हमारी यह प्रार्थना पूजित करें ॥ ५ ॥

(ऋक् अ० ७ सू० १०६ मं० १, २, ४, ७, ८,)

पुराण गाथा ।

वैकुंठनाथ तथा सनकादि संवाद ।

(ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी)

देवता–हे जगत्स्रष्टा ! सनकादि आपके मानसपुत्रों के शाप से जय विजय हरिपार्षदों का वैकुण्ठ से पतन होना आप के मुख से हमने सुना। अब हम यह सुनना चाहते हैं कि अपने पार्षदों का वृत्तान्त सुन कर भगवान् ने आकर सनकादि से क्या कहा, सनकादि ने उन्हें क्या उत्तर दिया और भगवान् ने समर्थ हो कर भी सनकादि के शाप को क्यों अंगीकार कर लिया ? यदि इसमें कोई गुप्त रहस्य न हो और हम सुनने के अधिकारी हों, तो आप हम से भगवान् और सनकादि का संवाद कहिये ! भगवान् के द्वारपाल सनकादि से डर गये, यह तो ठीक है परन्तु द्वारपालों ने यह जो कहा

कि भगवान् भी ऐसे भक्तों से डरते हैं, यह बात समझ में नहीं आती, इसका समाधान भी कर दीजिये।

ब्रह्मा–हे देवताओ! वैकुण्ठनाथ अपने पार्षदों का अपराध सुन कर इस प्रकार विचार करने लगे–

श्री भगवान्–(मन में) ओहो! मैं तो पत्र पुष्पादि चढ़ाने से ही अपने भक्तों से प्रसन्न हो जाता हूं और उनके दिये हुए पदार्थों का प्रेम से भोग लगाता हूं, सनकादिक तो मेरे अकिंचन निष्काम भक्त हैं, सर्व भोगों का त्याग करके निरन्तर मेरे ध्यान में ही मग्न रहते हैं, ऐसे मेरे अनन्य भक्त मेरा दर्शन करने के लिये आ रहे थे, बीच में ही रोक दिये गये, कितनी अनुचित बात है! मेरा छोटे से छोटा भक्त जब किसी कारण से मेरा पूजन अथवा ध्यान नहीं कर सका, तो उसे क्रोध आता है, ये मेरे भक्त तो अन्न की ड्योढी पर रोक दिये गये हैं, तब इनको क्रोध क्यों न आवेगा? मेरे दर्शनों की लालसा में जल्दी २ पैर उठाते हुए दौड़ते हुए चले आ रहे होंगे, मेरा स्वभाव न जानने वाले मेरे द्वारपालों ने उन्हें रोक दिया है, मेरे दर्शनों में देर होना क्रोध करने की ही तो बात है, फिर भला! उन्हें क्रोध क्यों न आवे। मुझे चल कर उनका क्रोध शान्त करना चाहिये, शीघ्र ही शान्त करना चाहिये! यदि मैं ऐसा न करूंगा, तो संसार भक्तों को कैसे विश्वास होगा कि मैं प्रतिक्षण अपने भक्तों की रक्षा करने के लिये उनके पास ही खड़ा रहता हूं और सब विघ्नों से उनकी रक्षा करता हूं।

ब्रह्मा–हे देवो! ऐसा विचार कर भक्तवत्सल भगवान् अपने भक्तों का क्रोध शान्त करने को तुरत ही दौड़े, पांव पयादा ही दौड़े, सुनन्दादि पार्षदों और लक्ष्मी सहित दौड़े और भक्तों के सामने आ खड़े हुए। भगवान् के पार्षद भगवान् के ऊपर हंस की सी शोभा वाले दो चंवर डुला रहे थे। उनकी अनुकूल वायु से चन्द्रमा के समान सुन्दर छत्र हिलता था, उसके हिलने से लटकते हुए मुक्ताहारों में से शीतल बूंदे गिर रही थीं। संपूर्ण द्वारपाल और मुनियों को प्रसन्न करने के लिये सुन्दर मुख वाले, स्पृहणीय गुणों के धाम, प्रेम दृष्टि से हृदय में सुख देने वाले, श्याम और गोल छाती पर सुशोभित लक्ष्मी से भगवान् तीनों लोकों के चूड़ामणि अपने वैकुण्ठ धाम को शोभा दे रहे थे। भगवान् की पृथु नितम्ब के ऊपर पीताम्बर था, पीताम्बर के ऊपर कांची, धानी तागड़ी चमक रही थी और उसी पीताम्बर पर वनमाला लटक रही थी, जिसके ऊपर भ्रमर गूंज रहे थे। भगवान् की कलाई में कड़े थे, एक हाथ गरुड़ के कंधे पर रक्खा हुआ था और दूसरे हाथ से कमल को घुमा रहे थे। भगवान् के कानों में बिजुली को तिरस्कार करने वाले मकराकार कुण्डल थे, जिन की झलक दोनों कपोलों पर और ऊंची नासिका वाले मुख पर पड़ रही थी, शिर पर मणि जटित किरीट था, दोनों भुजाओं के मध्य में गले पर से आया हुआ कौस्तुभ मणि का बहुमूल्य हार था। अधिक क्या कहूं, उस समय की भगवान् की शोभा को देख कर भगवान् के भक्तों ने अपने मन में ऐसा विचार किया कि लक्ष्मी अपने को सब से सुन्दर मानती है, परन्तु भगवान् के सौन्दर्य को देख कर लक्ष्मी का अहंकार चला गया है क्योंकि भगवान् का स्वरूप अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त है मेरे, शिव के और तुम्हारे भजने योग्य और समाधि में प्राप्त होने योग्य भगवान् की ऐसी मूर्ति को प्रत्यक्ष देख कर सनकादिकों के नेत्र

तृप्त न हुए और उन्होंने शिर झुका कर भगवान् को नमस्कार किया। भगवान् के चरण कमलों की केसर से मिली हुई तुलसी की मकरन्द से युक्त वायु ने नासिका के छिद्रों द्वारा भीतर जा कर उन ब्रह्मानन्द सेवियों के चित्त में अति हर्ष और शरीर में रोमांच कर दिया। इससे अनुमान होता है कि उन्होंने भजनानन्द में स्वरूपानन्द से भी अधिक आनन्द माना। कभी असित पद्म कोश के समान भगवान् के मुख को देख कर प्रसन्न होते थे, कभी लाल ओठों की कुन्द कली की सी हास्य को देख कर अपने को लब्धमनोरथ मानते थे और कभी नख रूप अरुण मणियों के आश्रयभूत भगवान् के दोनों चरणों का ध्यान करने लगते थे, इस प्रकार संभ्रम में पड़ गये थे। पश्चात् सावधान हो कर योगमार्ग से ढूँढने वाले पुरुषों की गति, ध्यान के आस्पद, अति आदरणीय, नयनों को आनन्द देने वाले, पुरुष शरीर दिखलाने वाले और नित्य अणिमादि आठ ऐश्वर्य वाले भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगे–

कुमार–हे देवों के देव! हे अनन्त! आप सब के हृदय में विराजमान हैं, फिर भी अशुद्ध अन्तःकरण वालों को दिखायी नहीं देते और हम से तो आप कभी भी नहीं छुपते किन्तु सर्वदा अपरोक्ष रहते हैं और इस समय तो आप हमारे नेत्रों के विषय ही हो रहे हैं यानी हम आप को अपने नेत्रों से स्पष्ट देख रहे हैं, यह हमारा अहोभाग्य है। आप हम से कभी नहीं छुपते, इस का कारण यह है कि जिन हमारे पिता से उत्पत्ति हुई है, उन हमारे पिता ने जिस रहस्य का उपदेश दिया है। वह रहस्य हमारे कानों में हो कर हमारी बुद्धि रूप गुहा में पहुंच गया है। यदि आप कहें कि तुम्हारे पिता ब्रह्मा ने तो अदृश्य आत्मतत्व का उपदेश दिया होगा और मैं तो दृश्य होने से अन्य हूं, तो ऐसा नहीं है, हे भगवान्! हम आप को ही परमात्म तत्व जानते हैं, आप परमात्मा तत्व ही हैं, इस समय विशुद्ध सत्व मूर्ति से इन भक्तों को आनन्द दे रहे हैं, आप की इस कृपा को जान कर आपके भक्त आप की दृढ़ भक्ति करके रागद्वेष रहित और निरहंकार हो कर आप को हृदय में देखते हैं। हे भगवान्! जो लोग आप के शरण हैं और आपके पावन यश का वर्णन करने वाली आप की कथा के रस को जानते हैं, वे चतुर पुरुष आप के प्रसाद रूप मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं, अन्य नाशवान् ऐश्वर्य का तो कहना ही क्या है? हे भगवान्! यदि भ्रमर के समान हमारा मन आप के चरण कमलों में रमण करे, वाणी तुलसी के समान आपके चरणों की शोभा से शोभा पावे और आपके दिव्य गुण गणों से कानों के छिद्र पूर्ण होते रहें, तो भले ही हमारे अपराध के बदले में हमें नरक की प्राप्ति हो, क्योंकि जब हम आप की भक्ति करते रहेंगे, तो हम से अपराध होगा ही नहीं, आप की भक्ति न करने से ही अपराध होता है, आप की भक्ति करने से अपराध नहीं होता आपके पावन भक्तों को न क्रोध होता है, न मात्सर्य होता है, न लोभ होता है और न अशुभ बुद्धि होती है। हे अपरिमित कीर्ति! आप ने अपना यह रूप जो प्रत्यक्ष दिखलाया है, उसको देखने से हमारी आंखों को बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ है, कुयोगियों को आप के इस रूप का दर्शन नहीं हो सका, योगियों को ही होता है, हे भगवन्! आप को नमस्कार है!

ब्रह्मा–हे देवो! योगेश्वर मुनियों के ऐसे भक्ति रस युक्त वचन सुन कर भगवान् प्रसन्न हो कर इस प्रकार कहने लगे:–

श्री भगवान्–हे मुनियो ! जय विजय नाम के ये दोनों मेरे पार्षद हैं, इन्होंने मेरा तिरस्कार करके तुम्हारा अपराध किया है। तुम मेरे भक्तों ने इनको जो दण्ड दिया है, वह ही मुझे अनुमत है, क्योंकि इन्होंने तुम देवों की अवहेलना की है, इसलिये उसी दण्ड के योग्य हैं, ब्राह्मण मेरे परम देव हैं, इसलिये मैं तुम से क्षमा मांगता हूं, क्योंकि मेरे सेवकों ने जो आप का अपराध किया है, वह अपराध मैं अपना किया हुआ ही मानता हूं। जैसे श्वेत कुष्ठ त्वचा को बिगाड़ देता है, इसी प्रकार भृत्य के अपराध करने पर लोग उसके स्वामी का नाम लेते हैं, तो उस स्वामी की कीर्ति में बट्टा लग जाता है। भाव यह है कि सेवकों का किया हुआ अपराध स्वामी का ही समझा जाता है। जिस मेरे अमृत रूप निर्मल यश के श्रवण करने से चंडाल तक भी समस्त जगत् शीघ्र पवित्र हो जाता है, वह पावन यश मैंने आप से ही प्राप्त किया है, इसलिये आप के प्रतिकूल व्यापार करने वाली अपनी भुजा को भी मैं काट डालूं, यानी लोकपालों को भी मार डालूँ, अन्य का तो कहना ही क्या है? जिन ब्राह्मणों के चरण कमलों में स्थित रज संपूर्ण लोकों के मल को दूर कर देता है और जिस रज की सेवा से मैंने शीलादि ऐसे गुण प्राप्त किये हैं, जिन गुणों के कारण से लक्ष्मी, जिसकी प्राप्ति के लिये अन्य ब्रह्मादिक नियमों का पालन करते हैं, मुझ विरक्त को भी नहीं त्यागती, ऐसे ब्राह्मणों के लिये मैं क्या नहीं कर सका ? सब कुछ कर सका हूं। जैसा मैं ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों के मुख द्वारा भोजन करने से संतुष्ट होता हूं, वैसा अग्नि के मुख द्वारा यजमान के यज्ञ में घृतयुक्त पायस आदि खाने से तृप्त नहीं होता। जिनके चरणों की रज को मैं अपने किरीटों से उठाता हूं, जिनका चरणोदक शिव सहित लोकों को शीघ्र पवित्र करता है। उन ब्राह्मणों को कौन नहीं सहेगा। सभी सहेंगे ! जो मूढ पुरुष मेरे शरीर ब्राह्मणों को, मेरी पुत्री गाय को, रक्षक हीन प्राणियों को भेद बुद्धि से देखते हैं, उनकी दृष्टि पाप के कारण से नष्ट हो गयी है, उन सर्प के समान क्रोध करने वालों को मेरे नियत किये हुए दण्डनेता यम के दूत रूप तीव्र क्रोध से नोचते हैं। जो लोग कठोर भाषण करने वाले ब्राह्मणों को भी वासुदेव मान कर पूजते संतुष्ट करते, प्रेम से भाषण करते हैं और पुत्र के समान सम्बोधन करते हैं, वे मुझे वश कर लेते हैं। इसलिये मेरे निश्चय को न जानने वाले ये मेरे सेवक तुम्हारा अपराध करने का फल पाकर शीघ्र ही मेरे समीप लौट आवें, यह जो आपने मेरे भृत्यों का थोड़े काल का विनाश हो जाने का शाप दिया है, वह मेरे ऊपर अनुग्रह है।

ब्रह्मा–हे देवो ! भगवान् की सुन्दर वाणी का स्वाद लेकर भी क्रोध रूपी सर्प से डसे हुए वे सनत्कुमारादि तृप्त न हुए। थोड़े शब्द थे, अर्थ बड़ा था, गंभीर वाणी को वे समझ न सके, प्रसन्न हो कर कहने लगे:–

सनकादि–हे भगवन् ! आप क्या करना चाहते हैं, वह हम नहीं समझे ! आप अध्यक्ष हो कर भी कहते हैं कि मेरे ऊपर अनुग्रह किया, यह बात भी हमारी समझ में नहीं आयी। हे प्रभो ! आप ब्रह्मण्य देव के ब्राह्मण परम देव हैं, यह आप का कथन तो लोक शिक्षा के लिये है, परमार्थ से तो देवों के देव ब्राह्मणों के आप भगवान् आत्मा और दैवत हैं। सनातन धर्म आप से होता है, आप के अवतारों से रक्षा किया जाता है, धर्म का फल आप हैं, इसलिये आप गोप्य हैं, अधिकारी हैं, स्वर्गादि के समान विकारी नहीं हैं, इसलिये

ब्राह्मणों को बड़ा कहना लोक शिक्षा के लिये है। जिन आप के अनुग्रह से योगी लोग मृत्यु से तर जाते हैं, ऐसे आप दूसरों से कैसे अनुग्रह किये जा सके हैं? नहीं किये जा सके। जिस लक्ष्मी के चरणों की धूल को अर्थार्थी शिर पर धारण करते हैं, वह ही लक्ष्मी आपके चरणों में पुण्यात्माओं से अर्पण करी हुई तुलसी की नयी माला के स्थान की, भ्रमरमुकप के लोक यानो आप के चरणों की इच्छा से अवसर २ पर आपकी सेवा करती हैं, वे ही आप ब्राह्मणों की पादरज से कैसे पवित्र हो सके हैं? नहीं हो सके। आप तीनों युगों में वेद धर्म के रक्षक हैं, यदि आप ब्राह्मणों की बड़ाई न करें, तो धर्म की रक्षा कैसे हो? आप अपने को छोटा और ब्राह्मणों को बड़ा जो बताते हैं, ऐसा करने से धर्म की रक्षा होती है, आप की इसमें कोई हानि नहीं है, क्योंकि बड़ा बड़ा ही रहेगा और छोटा छोटा ही रहेगा, बड़ा छोटा नहीं हो सका और छोटा बड़ा नहीं हो सका। छोटे को बड़ा और बड़े को छोटा कहना यह मात्र आप का विनोद है। यदि हमने कुछ अनुचित किया है तो आप हमको उचित दण्ड दीजिये, जिससे कि निरपराधों के ऊपर अपराध करने के पाप से हम मुक्त हो जांय।

श्री भगवान्–हे मुनियो! ये दोनों शीघ्र ही आसुर योनि पाकर द्वेष भाव से मेरा ध्यान करके फिर शीघ्र ही मुझे प्राप्त हो जांय, यह तुम्हारा दिया हुआ शाप मेरा ही दिया हुआ है, ऐसा जानो।

ब्रह्मा–हे देवो! इतना सुन कर, नयनानन्द वैकुण्ठ को और वैकुण्ठ के अधिष्ठान स्वयं प्रभा विकुण्ठ को देख कर चारों ऋषि भगवान् की परिक्रमा करके वैष्णवी लक्ष्मी की सराहना करते हुए चले गये। पश्चात् भगवान् द्वारपालों से कहने लगेः–

श्री भगवान्–हे जय विजय! जाओ, भय मत करो, तुम को शान्ति हो, ब्रह्मतेज को नष्ट करने को समर्थ हो कर भी मैं नष्ट करना नहीं चाहता, क्योंकि मेरा मन ऐसा ही है। सिवाय इसके जब मैं योग निद्रा में था, तब मेरे पास जाने वाली लक्ष्मी को तुमने द्वार पर रोक दिया था लक्ष्मी के क्रोध करने से जैसा कुमारों ने किया है, वह पूर्व ही निश्चित हो चुका था। द्वेषभाव से मेरा आराधन करके ब्राह्मणों की अवज्ञा से पार हो कर शीघ्र हो मेरे धाम में लौट आवोगे।

ब्रह्मा–देवो! द्वारपालों से ऐसा कह कर भगवान् अपने धाम में चले गये। ब्रह्म शाप से दोनों द्वारपालों के वैकुण्ठ से गिरने से देवताओं में महान् हाहाकार होने लगा। वे ही दोनों हरि के पार्षद कश्यप के तेज द्वारा दिति के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं। विश्वम्भर भगवान् ही इनके तेज को नष्ट करके तुम्हारा कल्याण करेंगे, हमारा इसमें कुछ कर्तव्य नहीं है।

भिक्षा

[रचयिता प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम]

याचे बहु धनपति, जनपति याचे बहु,
याचे बादशाह नाह औरहू नवाब के।
बड़े २ ज्ञानी गुणवान जो थे दानी जग,
याचे सबै पांव परि द्वारे जाय जायके॥
कोऊ नाहीं समरथ देवन को एति भीख,
तिहुं लोक मांही देखा नजर फिराय के।
ए हो दानी औघर सुघर जगनाथ! दर्श-
भीख देओ एक बेर नयन अघाय के॥

श्रीभगवच्चर्चा

द्वितीय चर्चा।

मरुद्गण जन्म

नारीमयी मोहनि हरिमाया।
ठगा जिसे सो ही पछताया ॥ १ ॥
मूढ़ हुआ मैं वश में ताके।
पड़ूं अवश्य नरक में जाके ॥ २ ॥
या काया में दोष नहीं है।
नारि स्वभाव अनादि यही है ॥ ३ ॥
अबुध स्वार्थ मैं जाना नांही।
रचा पचा हूं भोगों मांहीं ॥ ४ ॥
शारदकमल सम नारी का मुख।
वचनामृत कानों को दें सुख ॥ ५ ॥
हृदय तीक्ष्ण छुर धार समाना।
नारि चरित अद्भुत को जाना ॥ ६ ॥
योषित कूं जग प्यारा को है।
स्वार्थ परायण केवल जो है ॥ ७ ॥
पति सुत भाई बिना विचारे।
स्वार्थ विवश मराय वा मारे ॥ ८ ॥

दो०–करूं प्रतिज्ञा पूर्ण मैं, मिथ्या वचन न जाय।
इन्द्र मरण भी होय ना, भगवत् करे सहाय ॥

अस विचारि मरीचि सुत कश्यप।
कुपित होय बोले मन में तप ॥ १ ॥
भीरु! इन्द्रनाशक सुर बांधव।
होय पुत्र तब है यह संभव ॥ २ ॥
व्रत यह यदि संवत् भर धारे।
दैव विघ्न ना कोई टारे ॥ ३ ॥
दिति बोली भगवन् बतलाओ।
विधि निषेध जो हो समझाओ ॥ ४ ॥
बोले कश्यप करे न हिंसा।
पाले मन वच काय अहिंसा ॥ ५ ॥
मृषा न बोले देव न गारी।
वस्तु अमंगल छुए न प्यारी! ॥ ६ ॥
नख रोमन नांहीं कटवावे।
जल में घुस कर नांहीं न्हावे ॥ ७ ॥
कोप करे नांही मन मांही।
बात करे दुर्जन से नाहीं ॥ ८ ॥

दो०–वस्त्र न पहिने बिनु धुला, खाय न उच्छिष्टान्न।
खाय न चंडाली छुआ, मांस मिला ना अन्न ॥ ६ ॥

वतरी माला पहिने नांही।
जल पीवे ना अंजलि मांही ॥ १ ॥
झूठे मुख, बिनु हाथ पखारे।
खुले केश, बिनु भूषण धारे ॥ २ ॥
अजित वास्य तनके बिनु ढांके।
घरके बाहर पैर न राखे ॥ ३ ॥
गीले पैर, बिना पग धोये।
भीगे शिर अपवित्र न सोये ॥ ४ ॥
प्रात न सांझ न पांचित शिर धरि।
सोय न नग्न नहीं दो मिलकरि ॥ ५ ॥
धुले वस्त्र शुचि मंगल संयुत।
पूजे विप्र धेनु श्री अच्युत ॥ ६ ॥
पूजे पतिव्रती न भूषण से।
माला पुष्प गंध चन्दन से ॥ ७ ॥
अर्चे पति पुष्पादि चढ़ावे।
ताहि कुक्षि में बैठा ध्यावे ॥ ८ ॥

दो–वर्ष एक व्रत पुंसवन, धारे यदि निर्विघ्न।
कल्याणि तव पुत्र हो, आयुष्मन् इन्द्रघ्न ॥ १० ॥

होय प्रसन्न दिती व्रत कीन्हा।
कश्यप गर्भ जठर में लीन्हा ॥ १ ॥

यह वृत्तान्त इन्द्र जब जाना।
दिती भवन में आय सयाना ॥ २ ॥

सेवा करन लगा मौसी की।
जाने सो न इन्द्र के जी की ॥ ३ ॥

वन से पत्र पुष्प फल लावे।
कुश अंकुर घर में धरि जावे ॥ ४ ॥

करे कपट से सेव पुरन्दर।
मृग का वेश व्याध ज्यों धरकर ॥ ५ ॥

जावे दिति वहां ही जाई।
व्रत में देखत छिद्र सदाई ॥ ६ ॥

व्रत में छिद्र न कोई पाया।
तब तो इन्द्र बहुत घबराया ॥ ७ ॥

ईश्वर का करि ध्यान पुकारा।
देवों का है तुही सहारा ॥ ८ ॥

दो–युग युग में अवतार ले, देवन पालत ओय।
दैत्य दानवन घालता, हो रक्षक मम सोय ॥ ११ ॥

धोये बिनु मुख पद मत कर्षित।
दिती एक संध्या विधि मोहित ॥ १ ॥

गयी सोय चौदिश कूं सिर धरि।
अवसर पाकर योगेश्वर हरि ॥ २ ॥

पैठि उदर के मांहि पुरन्दर।
देखा बालक अति ही सुन्दर ॥ ३ ॥

टुकडे सात वज्र से कीन्हे।
एक साथ सातों रो दीन्हे ॥ ४ ॥

रोओ मत ऐसा कहकर हरि।
सातों सात सात कीन्हे करि ॥ ५ ॥

इन्द्र उन्हें फिर काटन चाहा।
तब वे सब बोले करि हाहा ॥ ६ ॥

हैं हम तेरे अदितीनन्दन।
पार्षद भाई भक्त मरुद्गण ॥ ७ ॥

बोला इन्द्र डरो मत भाई।
तुम सब मैं लीन्हें अपनाई ॥ ८ ॥

दो–अनुकम्पा से ईशके, इन्द्रकुलिश की धार।
दितीगर्भ नांही मरा, उलट हुआ विस्तार ॥ १२ ॥

सो–आदि पुरुष मनलाय, एक बार जो पूजता।
परम शान्ति सो पाय, वर्ष एक पूजा दिती ॥ १ ॥

सेन्द्र हुए पंचास मरुद्गण।
सर्व सोमपा दिव्य सुवड तन ॥ १ ॥

कनक प्रभा कुमार अति सुन्दर।
देखे दिती महल के अन्दर ॥ २ ॥

देवी मन में अति अनुरागी।
वज्रपाणि से पूछन लागी ॥ ३ ॥

तात ! देवतन मारन हारा।
मोर उदर से होय कुमारा ॥ ४ ॥

या हित मैं व्रत दुष्कर धारा।
वर्ष एक दुख सहा अपारा ॥ ५ ॥

मांगा एक पुत्र था प्यारे!
इतने कैसे हुए बतारे ॥ ६ ॥

हे सुत सत्य सत्य दे बतला।
जो कुछ मर्म होय दे समझा ॥ ७ ॥

बोला इन्द्र बात सुन माई।
सब सच कहूं न कछू बनाई ॥ ८ ॥

दो–अर्थबुद्धि मैं मातु हूं, जानूं धर्म न लेश।
अभिप्राय तव जानि मैं, मनमें पाया क्लेश ॥ १ ॥

माता ! तव समीप मैं आया।
तव सेवा में चित्त लगाया ॥ १ ॥

छिद्र पाय के गया उदर में।
देखा शिशु कोमल सुन्दर मैं ॥ २ ॥

टुकडे सात कुलिश से कीन्हे।
सातों रोदन करते चीन्हे ॥ ३ ॥

सात सात टुकड़े सातों के।
करि दीन्हें मैं सब रोतों के ॥ ४ ॥
मरे नहीं वे वज्र हनें से।
माता! आदि पुरुष पूजे में ॥ ५ ॥
आराधें जे नित्य महेश्वर।
भोग मोक्ष की आशा तजकर ॥ ६ ॥

वेही कुशल स्वार्थ में नर हैं।
अन्य नहीं जे इच्छाचर हैं ॥ ७ ॥
निज भक्तन जो निजपद देवे।
मूढ़ ताहि भज धन जन लेवे ॥ ८ ॥
दो०—क्षमा करौं मम दुष्टता, मातु नवाऊं माथ।
असकहि. आज्ञा इन्द्रले, गया मरुद्गण साथ ॥ १४ ॥
इति द्वितीय चर्चा

दर्शन-परिचय

(ले० पं० शिवनारायण जी शास्त्री)

गतांक से आगे।

उद्देश्य

इस मायिक संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नज़र नहीं आता जो दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति के लिये यत्न न करता हो चाहे वह साधारण जन हो या विद्वान् हो। जैसा कि महाभारत शान्ति पर्व में भारद्वाज के प्रति भृगुजी का कथन है:—

इह खलु अमुष्मिंश्च लोके वस्तुप्रवृत्तयः सुखार्थमभिधीयन्ते। न ह्यतः परं त्रिवर्गफलं विशिष्टतरमस्ति ॥'

अर्थात् इस लोक और पर लोक में जितनी प्रवृत्तियें हैं वे सब केवल सुख के लिये हैं और त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम का इसके सिवा दूसरा कोई प्रयोजन या फल नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि—प्राणी मात्र को सुख तो ईप्सित है और दुःख अनीप्सित है। जैसा कि महाभारत के शान्ति पर्व में भगवान् व्यास देव का वचन है:—

"दुःखादुद्विजते सर्वः सर्वस्य सुखमीप्सितम् ॥"

अर्थात् दुःख से सभी घबड़ाते हैं और सुख को सभी चाहते हैं। पर इस संसार में प्रायः दुःख ही दुःख है, सुख का तो नाम निशान भी दृष्टि गत नहीं होता, थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि—कभी कभी कुछ २ तो सुख होता ही है, तो वह भी तो दुःख मिश्रित ही होता है, अत एव हमारे पूर्वज वानप्रस्थ हो कर विश्राम के लिये वन का सहारा लेते थे। जैसा कि पतञ्जलि का सूत्र है:—

"परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः" ॥ (यो० २। १५)

अर्थात् परिणाम दुःखता आदि धर्मों से मिश्रित होने से विवेकी पुरुष को सभी विषय सुख, दुःख रूप ही भान होता है। इस सूत्र का विशेष विवरण योग दर्शन में देखो, विस्तार के भय से हम लिखना उचित नहीं समझते।

'मुक्तिवाद' ग्रन्थ में गदाधर भट्टाचार्य कहते हैं:—

अस्मिन् संसार कान्तारे कियन्ति दुःखदुर्दिनानि। कियती वा सुख खद्योतिका" ॥ इत्यादि।

अर्थात् यह संसार रूपी गहन वन दुःखों से सरासर भरा हुआ है, सुख तो इसमें आकाश में चमकते हुए क्षुद्र पटबीजने के समान बहुत ही थोड़ा है और वह भी दुःख मिश्रित। इससे सिद्ध हुआ कि-संसार दुःखमय है इसमें सच्चा सुख नहीं है, ऐसा न हो कि इसी मिथ्या सुख को सच्चा सुख मान बैठें और पारमार्थिक सच्चे सुख से सदा वञ्चित रह जांय, ऐसा न हो कि अरघट्ट यन्त्र के समान इसी अन्धकूप में बार २ पतन ही होता रहे, बस यही सोच समझ कर परम कारुणिक ऋषि महर्षियों ने हमारे कल्याण के लिये इन दर्शन शास्त्रों का निर्माण या रचना की है।

इस में बतलाया गया है कि-जब तक यह संसारी प्राणी, आत्मतत्व का ज्ञान संपादन नहीं कर लेता तब तक किसी हालत इसका इस संसार सागर से निस्तार नहीं होता किन्तु रहट के समान आवागमन होता ही रहता है, आत्मतत्व ज्ञान ही सच्चा एवं पारमार्थिक सुख है।

भगवती श्रुति कहती है:-

यदात्मानं विजानीयादहमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय संसारमनुसंसरेत्॥'

अर्थात् जब यह प्राणी "यह मैं हूं" इस प्रकार अपने स्वरूप को जान लेता है, तब उसका आवागमन छूट जाता है फिर वह इस संसार सागर में गोते नहीं खाता।

स्मृति भी कहती है:-

"आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्॥"

शब्द अनुमान और ध्यानाभ्यासरस इन तीनों से बुद्धि को निर्मलता करता हुआ उत्तम योग या मुक्ति को पा लेता है।

इससे आत्मा का ही श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना प्राणी मात्र का परम ध्येय एवं लक्ष्य है। वही अमृत है, परम सुख है।

जैसा कि श्रुति कहती है:-

"आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्चैतावदरे खल्वमृतत्वम्॥"

इससे सिद्ध हुआ कि-दर्शनों का उद्देश्य भी वही है जिसको वेद में परम पुरुषार्थ माना है। मोक्ष से बढ़ कर और कोई उद्देश्य नहीं है, इसी को दर्शन भी अपने २ ढंग से प्रकट करते हैं॥

दर्शन शास्त्रों के नाम।

यों तो "सर्वदर्शनसंग्रह" ग्रन्थ में माधवाचार्य ने बहुत से दर्शनों का नाम उद्घाटन किया है, परन्तु प्रधानतया प्रसिद्ध आस्तिक दर्शन छः ही हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं:-

(१) न्याय (२) वैशेषिक (३) सांख्य (४) योग (५) पूर्व मीमांसा और (६) उत्तर मीमांसा या वेदान्त।

आस्तिक वे कहलाते हैं जिनकी 'वेद में कहे हुए परलोक आदि हैं, ऐसी बुद्धि है और नास्तिक वे हैं जो वेद में कहे हुए परलोक आदि को नहीं मानते॥ नास्तिक दर्शन केवल युक्तियों को ही प्रमाण मानता है पर आस्तिक दर्शनों का निश्चय है कि-तर्क की कोई सीमा नहीं है। यदि शब्द प्रमाण का त्याग कर केवल तर्क का ही प्रमाण माना जाय, तो जगत् का कोई व्यवहार नहीं बन सकता। इसके अतिरिक्त केवल तर्क को वस्तुतत्व के निर्धारण में प्रमाण माना जाय तो, व्यक्ति २ में तर्क शक्ति के भिन्न २ होने से वस्तुतत्व में भी भेद होने लगेगा। अत एव आस्तिक दर्शन प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों के अतिरिक्त ईश्वरीय ज्ञान को अभ्रान्त स्वीकार करते हुए श्रीवेद भगवान

को स्वतः प्रमाण मानते हैं। इसी लिये ऋषियों ने विद्वान उन्हीं व्यक्तियों को कहा है जो तर्क और शास्त्र में विरोध नहीं देखते, किन्तु उनमें समता और एकता को स्वीकार करते हुए एक प्रकार का पोष्य पोषक भाव मानते हैं।

दर्शन शास्त्रों के कर्ता।

(१) न्याय

न्याय शास्त्र के कर्ता भगवान् गौतम मुनि हैं। इस शास्त्र के पांच अध्याय हैं और प्रति अध्याय दो २ आन्हिक हैं। गौतम मुनि कहते हैं-प्रमाण आदि १६ पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस या मुक्ति होती है।

"प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्क निर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छल जाति निग्रहस्थानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।"

यह इनका पहला सूत्र है और "हेत्वाभासाश्च यथोक्ताः" अन्त का ॥ १ ॥

(२) वैशेषिक

वैशेषिक शास्त्र के निर्माता हैं भगवान कणाद महर्षि। इस शास्त्र के दश अध्याय हैं और प्रति अध्याय दो २ आन्हिक हैं। भगवान कणाद कहते हैं-द्रव्य आदि छः पदार्थों के तत्वज्ञान से मुक्ति का लाभ होता है। जैसा कि उनका सूत्र है:-

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। १।१।४

अर्थात् इस जन्म के अथवा जन्मान्तर के सुकृत विशेष से द्रव्य आदि पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा तत्व का ज्ञान होता है तदनन्तर मिथ्याज्ञान आदि के नाशक्रम से मोक्ष होता है इस शास्त्र का "अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" यह पहला सूत्र है और "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्" अन्त का ॥

(३) सांख्य

सांख्य दर्शन के प्रणेता भगवान् कपिल महर्षि हैं। इस शास्त्र के छः अध्याय हैं। कपिल महर्षि कहते हैं-प्रकृति आदि २४ तत्वों के परिज्ञान से पुरुष मुक्त होता है। इस शास्त्र का "अथ त्रिविध दुःखात्यन्त निवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः" यह पहला और "यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः" यह अन्त का सूत्र है। यही कपिल मत "निरीश्वर सांख्य" इस नाम से प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

(४) योग

योग दर्शन के रचयिता हैं भगवान् पतञ्जलि। इस शास्त्र के ४ पाद हैं (१) समाधि (२) साधन (३) विभूति और (४) कैवल्य। सांख्य और योग का एक ही सिद्धान्त है, केवल भेद इतना ही है कि-इसमें ईश्वर को भी अलग तत्व माना है, इस लिये यह शास्त्र 'सेश्वर सांख्य' इस नाम से पुकारा जाता है। इस शास्त्र का "अथ योगानुशासनम्" यह आदिसूत्र है और "पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूप प्रतिष्ठा वा चितिशक्तिः" यह अन्त का सूत्र है ॥ ४ ॥

(५) पूर्व मीमांसा

मीमांसा शास्त्र के कर्ता भगवान् जैमिनि मुनि हैं। इस शास्त्र के १२ अध्याय हैं और अनेक अधिकरण हैं। जैमिनि मुनि कहते हैं-चार प्रकार के कर्म हैं-नित्य, नैमित्तिक, काम्य और निषिद्ध। जो पुरुष चाहता है कि-'मेरी मुक्ति हो' उसे उचित है कि वह भ्रम से भी कभी काम्य और निषिद्ध कर्म न करे, किन्तु पूर्व कृत अधर्म के क्षय के लिये नित्य और नैमित्तिक ही कर्म किया करे। जैसा कि श्लोक वार्तिक में कहा है।

"मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः ।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात् प्रत्यवाय जिहासया ॥"

इस प्रकार नित्य और नैमित्तिक कर्म करते २ जब सब कर्म क्षीण हो जाते हैं, तब स्वयं पुरुष मुक्त हो जाता है। इस शास्त्र का "अथातो धर्म जिज्ञासा" यह पहला सूत्र है और "विद्यते वाव्य-कालत्वात् यथा याज्यासम्प्रैषः" अन्त का ॥ ५ ॥

(६) वेदान्त ।

वेदान्त शास्त्र के कर्ता भगवान् बादरायण हैं। भगवान् बादरायण कहते हैं–वास्तव में जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है, केवल भ्रम या अविद्या दोष से ही ब्रह्मरूप अधिष्ठान में जगत् की प्रतीती हो रही है। जैसे किसी अभियुक्तने कहा है:–

"श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः ॥"

इसी वेदान्त शास्त्र का दूसरा नाम उत्तर मीमांसा है। इसके ४ अध्याय हैं और अनेक अधिकरण हैं। इस शास्त्र का पहला सूत्र है–"अथा-तो ब्रह्म जिज्ञासा" और अन्तका सूत्र है–"अना-वृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्" ॥ ६ ॥

उपदेश शैली वा दर्शनशास्त्र मन्त्री है ।

संस्कृत विद्या का यदि विभाग किया जाय तो, वह चार भागों में बांटी जा सकती है, जैसे प्रभु, कान्ता, मित्र और मन्त्री। यहाँ 'वेद' प्रभु, शब्द है। इसके वचन प्रभु की आज्ञा है, प्रजा जैसे अपने राजा की आज्ञा का बिना सन्देह पालन करती है उसमें यदा तदा नहीं करती, इसी प्रकार मनुष्य के लिये वेद वचन सर्वथा पालनीय हैं ॥

काव्य आदि कान्ता शब्द से कहे जा सकते हैं। स्त्री जैसे अपने स्वामी को प्रेम भरे मधुर वचनों से उपदेश देती है, काव्य भी उसी प्रकार, मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य के विषय में उपदेश देते हैं। सारे 'रघुवंश' काव्य के अध्ययन से हमें यही शिक्षा मिलती है कि–'राम के समान आचरण करना चाहिए, और रावण के समान कभी भूल से भी आचरण नहीं करना चाहिए।

पुराण इतिहास आदि सुहृच्छब्द या मित्र शब्द हैं। मित्र जिस भान्ति अपने मित्र को दृष्टान्त आदि अनेक यत्नों से "एवं कृते एवं भवति" इस प्रकार उपदेश करता है, पुराण आदि भी वैसे, भयानक, रोचक प्रभृति कई एक प्रकार की कथाओं और कल्पनाओं से "एवं कृते इदमिष्टं भवति, एवं च कृते इदमनिष्टं भवति" इस प्रकार मनुष्य को शुभ प्रवृत्ति और अशुभ निवृत्ति के लिये उप-देश करते हैं।

दर्शनों का स्थान काव्य और पुराण आदि से ऊंचा और वेद से नीचे है, दूसरे शब्दों में इसे यों भी कह सकते हैं कि–'चार कक्षाओं में इनका स्थान दूसरा है'। ये 'प्रभु' शब्द नहीं हैं और नाहीं 'मित्र' और 'कान्ता' शब्द हैं; किन्तु ये हैं 'मन्त्रि' शब्द। क्योंकि ये आज्ञा नहीं देते इससे 'प्रभु' शब्द नहीं हो सकते और मधुर वचनों से तथा कथाओं से उपदेश नहीं देते, इसलिये 'मित्र' और 'कान्ता' शब्द भी नहीं कहे जा सकते, किन्तु बुद्धिमान मन्त्रि के समान वस्तुतत्वों की समालोचना पूर्वक सत्यासत्य का निर्णय मनुष्य के सामने उपस्थित करते हैं; इसलिये ये मन्त्री ही हैं। इन मन्त्रि शब्दों द्वारा 'प्रभु' शब्द का ज्ञान पूर्ण रीति से हो सकता है। जैसे राजा का दर्शन उसके मन्त्री की सहायता के साथ किया जाय तो उत्तम और मनोरथ देने वाला होता है, इसी प्रकार प्रभु शब्द वेद का अध्ययन, मन्त्रि शब्द दर्शनों के अध्ययन पूर्वक किया जाय तो, सफल होता है, अन्यथा कृत कृत्यता में सर्वथा सन्देह ही है। श्रीवेद भगवान्

विद्याओं के राजा हैं, दर्शन सब इनके मन्त्री हैं। इन दर्शनों की प्रसिद्ध 'पार्लिमेण्ट' की भान्ति सभा है जिसके आस्तिक और नास्तिक दर्शन यह विरोधी गण हैं। इस मन्त्री सभा के अधिकार में साधारण विद्याओं की समायें कान्ता शब्द और मित्र शब्द हैं॥

अधिकारी भेद से दर्शनों की व्यवस्था।

कनिष्ठ अधिकारियों के लिये न्याय और वैशेषिक, मध्यम अधिकारियों के लिए सांख्य और योग और उत्तम अधिकारियों के लिये वेदान्त है। वेदान्त शास्त्र श्रवण में उपयोगी है, न्याय शास्त्र मनन में उपयोगी है और योग शास्त्र का निदिध्यासन में उपयोग होता है, इस प्रकार तीनों ही शास्त्र, सामान्यतः मोक्ष फल के जनक हैं। न्याय और वैशेषिक परस्पर में समान तन्त्रता से व्यवहार किये जाते हैं और सांख्य और योग आपस में समान तन्त्र से व्यवहृत होते हैं, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा का जोड़ा है।

वाद विवेचन।

कणाद और गोतम 'आरंभवाद' को स्वीकार करते हैं। कारण से किसी कार्य्य का आरंभ किया जाता है, जैसे मिट्टी से घट, और तन्तुओं से पट इत्यादि। इनके मत में कार्य और कारण परस्पर भिन्न २ हैं और परमार्थ से सत्य होते हैं। सांख्य सिद्धान्त में 'परिणाम वाद' है। एक चीज़ दूसरे रूप में बदल जाती है अर्थात् आविर्भाव और तिरोभाव होता है, उत्पत्ति और नाश किसी वस्तु का नहीं होता। इन के मत में दही दुध से कार्यान्तर और भिन्न नहीं किन्तु दुध ही दही रूप से परिणत हुआ माना जाता है। वेदान्त मत में विवर्त वाद है। एक वस्तु का दूसरे रूप में भासना 'विवर्त' कहलाता है। इसी को अध्यास और मिथ्याज्ञान कहते हैं। इसमें अधिष्ठान सत्य होता है।

"यस्तात्विकोऽन्यथाभावः परिणाम उदीरितः।
अतात्विकोऽन्यथाभावो विवर्तः स उदीरितः॥"

किसी मूल वस्तु से जब तात्विक अर्थात् सचमुच ही दूसरे प्रकार की वस्तु बनती है, तब उसको परिणाम कहते हैं और जब ऐसा न हो कर मूल वस्तु ही कुछ की कुछ (अतात्विक) भासने लगती है, तब उसे विवर्त कहते हैं। इति शम्॥

-):(- रकार रामचन्द्र हैं मकार मातु जानकी -):(-

(श्री १०८ बाबा रघुनाथ दास जी बड़ी छावनी श्री अयोध्या जी)

रकार निराकार निर्विकार ब्रह्मसार मैं मकार महातत्व प्रकृति शक्ति है समान की।
रकार ही हर विधि सिद्धि साध्य सकल मकार में उमा रमादि होत हैं कितान की॥
रकार अब मकार को अपार रघुनाथ गाथ पावत न पार शेष शारदा बखान की।
उपासना अखंड एक नाम की रहै सदा रकार रामचन्द्र हैं मकार मातु जानकी॥

(हरिनाम सुमरणी से)

दो मार्ग

(ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी आश्रम)

इस संसार रूप महावन में दो मार्ग हैं। एक प्रवृत्ति दूसरा निवृत्ति। दोनों मार्ग विभिन्न लक्ष्य (स्थान) पर पहुंचाते हैं। प्रवृत्ति का लक्ष्य प्रकृति तथा निवृत्ति का ईश्वर है। प्रकृति की ओर से लौटने (मुंह फेरने) को निवृत्ति कहते हैं। प्रवृत्ति प्रवेश (माया देवी के घर-संसार में घुसने) को कहते हैं। निवृत्ति निकलने की (मायिक प्रपञ्च को त्यागने की) कहते हैं। यह संसार माया का कार्य है। ईश्वर में जो माया का अंश है वह इस संसार रूप विचित्र वन को रचता है। संसार में जो भी पदार्थ दृश्यमान हैं सब माया की चेष्टा के नजारे हैं। यावन्मात्र वस्तु माया के द्वारा उत्पन्न हुई हैं। इन दो मार्गों में से प्रथम मार्ग इस महावन के अन्दर ही चक्कर लगाता है। इस मार्ग द्वारा इस भीषण वन से पार नहीं हो सकते। इस भयंकर वन में बड़े २ भयानक सिंहक जन्तु निवास करते हैं। बड़े २ व्याल मुंह फाड़े पड़े हुये हैं। यदि किसी जीव को देखा कि हड़प कर गये। इसी प्रकार के भयंकर प्राणियों से यह वन पूर्ण है। प्रवृत्ति रूप मार्ग से जाने वाले प्राणी इन कराल जीवों के पंजे में फंसते हैं। इस वन में व्याधों के गण बड़ी युक्ति से मनुष्य रूपी पक्षियों को विषय रूप प्रलोभनों से ललचा कर वशवर्ती कर लेते हैं। इस मार्ग पर चलने वाला यात्री चाहे कितना भी तेज चलने वाला हो इसी में चक्कर काटता रहता है। यह भूल भुलैयां है। इसमें यह प्रवृत्ति रूप मार्ग भी बड़ा रोचक व मन को भुलाने वाला है। इसमें बड़े सुन्दर २ पदार्थ स्थान २ पर जाने वाले का मन हरण कर लेते हैं। इसमें रहने वाले घातक प्राणी जिस प्रकार किसी तीर्थ स्थान में याचक यात्रियों को चिपट जाते हैं इसी प्रकार जीवों को चारों ओर से घेर कर फांस लेते हैं। वास्तव में यह संसार माया रूप व्याधिनी का विशाल जाल है। विषय रूप विषतण्डुल पड़े हैं जिन को देख कर भोले प्राणी लालच से उन पर आसक्त हो कर अपने को ऐसे दुःखद जाल में फंसा देते हैं कि जन्म जन्मान्तरों तक नहीं छुट पाते।

उपनिषदों में इनको श्रेय और प्रेय नामों से कहा है। नचिकेता के तीसरे प्रश्न का समाधान करते हुये यमराज ने कहा—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति हीयतेऽर्थात् य उ-
प्रेयो वृणीते।

श्रेय और प्रेय विभिन्न मार्ग हैं जो कि भिन्न २ प्रयोजन वाले पुरुष को वासना रूप रज्जू में बांधते हैं। उनमें से श्रेय को ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है प्रेय लेने वाला अपने पुरुषार्थ (लक्ष्य) से गिर जाता है। विद्वान् धीर पुरुष दोनों का विवेचन करके श्रेय को ग्रहण करते हैं, अज्ञानी पुरुष प्रेय को वरण करते हैं। उक्त श्रुति से सिद्ध होता है कि निवृत्ति मार्ग मोक्ष का तथा प्रवृत्ति मार्ग बन्धन का हेतु है।

जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करता हुआ अनेकों कष्ट सहन करता हुआ अन्तिम योनि (मनुष्य शरीर) में आकर भी यदि फिर प्रवृत्ति मार्ग में ही लग जाय तो निश्चय फिर

चौरासी का चक्कर तयार है। इस प्रकार सदा ही कष्ट परम्परा में जकड़ा हुवा प्राणी विना वैराग्य कभी नहीं छूट सकता। इस प्रेय मार्ग में सब पदार्थ, स्त्री, पुत्र, धन दौलत आदि सभी बन्धन के हेतु हैं। ये सब मोह लोभ रूपी दृढ़ बन्धन से गरीब दीन जीव को इस प्रकार कस के बांधते हैं कि लाख जतन करने पर भी फिर नहीं छूट सकता। यदि इस शोचनीय दशा से छूटने की कोई सूरत है तो मात्र इनका सर्वथा त्याग-निवृत्ति या वैराग्य है। बिना इस पक्की सड़क के बड़े कभी भी यह लम्बा चौड़ा रास्ता तह नहीं हो सकता। यद्यपि संसार के विषयों में मनुष्यों की स्वभाविक ही आसक्ति-प्रवृत्ति है, परन्तु निवृत्ति रूप महाफल इनके त्याग से ही प्राप्य है। जैसा कि भगवान् मनुने कहा है:-

न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥

जो सांसारिक वैभव से परिपूर्ण है तथा जिसने इसको त्याग दिया उन दोनों में त्यागने वाला ही श्रेष्ठ है। तथा च मनुः-

यश्चैतान्प्राप्नुयात्कामान् यश्चैतान् केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते॥

सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग कर अपनी इन्द्रियों को विषयों से कछुवे के अंगों की समान संकोचन करके निरन्तर आत्मा में रत रहने वाला योगी ही धन्य है। मनुष्य जब तक कामनाओं का दास है तथा विषयों में प्रवृत्तिमान् है तब तक बारम्बार जन्मता और मरता रहता है। कामनाओं के वश हुवा प्राणी नाना कष्ट उठाता हुवा कोल्हू के बैल की समान निरन्तर चक्कर काटता रहता है। इस प्रभावशाली जगत् में बड़े २ ज्ञानी पुरुष भी प्रवृत्ति के चक्कर में पड़ कर अपने लक्ष्य से च्युत हो कर अधोगति को प्राप्त होते हैं। यह इन्द्रियग्राम ऐसा प्रबल है कि प्रवृत्ति वाले पुरुषों की सम्पूर्ण शक्ति का क्षणभर में क्षय कर देता है।

महात्मा पुरुष कहते हैं कि इस संसार का त्याग करो, क्योंकि इसके प्रत्येक कर्म की प्रवृत्ति दुःख का हेतु है। विषयों के भोग काल में क्षणिक सुख भासता है परन्तु वह क्षणिक सुख चिरकालिक दुःख का हेतु है। इसलिये दुःख के कारणों को त्याग देना चाहिये। आत्मा को सब झंझटों से छुड़ा कर सुखी करना चाहिये यही जीव का मुख्य उद्देश्य है। दुःख के हेतु का त्याग करने से दुःख छूट जाता है इसी लिये नीति में कहा है:-

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

आत्मा के उद्धार के लिये सब को त्याग दे। तभी सुख की संभावना हो सकती है। बहुत से महानुभाव चारों आश्रमों में यथाक्रम प्रवेश करके पुनः निवृत्ति को मानना उचित समझते हैं। परन्तु यह चक्कर का रास्ता है। मोक्ष तो निवृत्ति से ही होती है फिर संसार में प्रवृत्ति करके कर्म फांस में क्यों बन्धना चाहिये। प्रथम तो सीधे मार्ग से गन्तव्यस्थान की शीघ्र प्राप्ति होती है। दूसरे तरुण अवस्था में शरीर में बल होता है, चक्कर के मार्ग में बहुत विलम्ब लगता है तथा थकान बढ़ जाती है। कभी २ तो संसार दावानल से प्राणी अधिक तपाया हुवा बीच में ही झुलसा जाता है। व्यास जी के पुत्र शुकदेव जी जन्मते ही निवृत्ति पथ पर चल दिये, तो व्यास जी मोहवश पुत्र के पीछे दौड़ते हुये पुकारने लगे कि हे पुत्र! जन्मते ही त्यागने का विधान नहीं, प्रथम आश्रमों में वर्तते हुये तीनों ऋण से मुक्त हो कर निवृत्त मार्ग पर चलना चाहिये ऐसा शास्त्रों का

मत है। तब विद्वान् शुकदेव जी ने (यदाह वै विरज्येत तदैव प्रव्रजेत्–अर्थात् जब वैराग्य हो जाय तभी संन्यास धारण करे) इस श्रुति से व्यास जी को निरुत्तर किया था ! अतः यह सिद्ध है कि– "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" श्रेष्ठ कर्म में देर करने से बहुत विघ्न आ पड़ते हैं। प्रवृत्ति रूप संसार में बहुत से ऐसे कर्म बन्धन पड़ जाते हैं कि उनके बिना भोगे निबटेरा नहीं होता। इसलिये "प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्" कीचड़ में फंस कर उसको धोने की अपेक्षा कीचड़ के पास न जाना ही श्रेष्ठ है। प्रवृत्ति रूप कर्म कीचड़ को धोने की अपेक्षा निवृत्ति का अनुसरण ही परम श्रेयस्कर है। अतः जहां तक हो सके प्रवृत्ति को परित्याग करके निवृत्ति के सुरम्य पथ का अनुसरण करना चाहिये। इति शम्॥

निज आयुध भुजचारी।

(श्रीराम चरित मानस)

[ले० श्री महावीर प्रसाद (बतरंग वली) श्री वास्तव]

श्रीराम चरित मानस में भगवान् श्री राम के कौशल्या जी के सन्मुख प्रगट होने के अवसर पर निम्नलिखित छन्द आता है।

भये प्रगट कृपाला परम दयाला कौशल्या हितकारी।
हर्षित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषण बन माला नयन विशाला शोभासिन्धु खरारी॥

इस छन्द में 'निज आयुध भुजचारी' का अर्थ रामायण जी के वक्ताओं तथा टीकाकारों ने दो प्रकार से किये हैं। जिनमें एक अर्थ से शंख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज श्री वैकुण्ठनाथ रूप से कौशल्या जी के सन्मुख भगवान् श्रीराम का प्रगट होना पाया जाता है, और दूसरे अर्थ से धनुषधर द्विभुज श्री साकेत विहारी रूप से ही प्रभु का प्रगट होना पाया जाता है। पर परंपरा रूप से अन्य आर्ष ग्रंथों में श्री राम कृष्ण दोनों ही अवतारों में अधिकतर जन्म समय में शंख चक्र गदा पद्म धारी चतुर्भुज रूप से ही भगवान् का प्रगट होना पाया जाता है। इस कारण श्री राम चरित मानस रामायण के प्रकरण की ओर विशेष ध्यान न देकर अन्य आर्ष ग्रन्थों की तरह शंख चक्र गदा पद्मधारी चतुर्भुज रूप से ही भगवान् श्री राम का प्रगट होना अधिकांश रामायण प्रेमी मानते हैं। और इस अर्थ को ही ठीक व प्रसंगानुकूल मानते हैं। दूसरे अर्थ को, जिस में धनुष धर द्विभुज रूप से ही भगवान् का कौशल्या जी के सन्मुख प्रगट होना पाया जाता है, उपासकों की क्लिष्ट कल्पना समझ कर उस अर्थ की बिल्कुल उपेक्षा कर डालते हैं। कुछ समय पहले इस प्रसंग में मेरी भी यही व्यवस्था थी, पर कुछ समय से श्री रामचरित मानस के प्रसंग पर विचार करने पर मेरा वह विचार अब शिथिल पड़ गया है। किन्तु तुलसीकृत रामायण के प्रसंग के अनुसार 'निज आयुध भुज चारी' का धनुष धर द्विभु

रूप सूचक अर्थ ही अधिक संगत प्रतीत होता है। इस लेख में मैं इसी विषय को विस्तृत रूप से स्पष्ट कर के पाठक सज्जनों के सन्मुख रखना चाहता हूं।

'निज आयुध भुज चारी' से द्विभुज धनुष धर रूप का अर्थ करने वाले सज्जनों पर खींच तान-क्लिष्ट कल्पना व उपासना का पक्ष आदि विचारों की कल्पना का आरोपण कर देना आज कल की वैष्णव समाज के वायु मण्डल में बहुत आसान हो गया है, इस का कारण यह है कि भगवान् की अनन्य भक्ति का तात्पर्य्य-वैष्णव समाज में आज कल प्रायः बहुत ही स्थूल तथा शास्त्र से विपरीत हो रहा है। मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के उपासक श्री वृन्दावन को अपना इष्ट धाम न समझें, श्री कृष्ण की मूर्ति के दर्शन तथा दण्डवत् करने, उनका प्रसाद लेने व मुख से श्रीकृष्ण नाम का उच्चारण करने में अपनी अनन्य भावना में बाधा समझें। ऐसे ही लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक श्री अयोध्यापुरी को अपना इष्ट धाम न समझें, भगवान् श्री राम की मूर्ति के दर्शन तथा दण्डवत् करने ,उन का प्रसाद लेने, मुख से श्री सीताराम नाम उच्चारण करने में अपनी अनन्यता में बाधा समझें। द्विभुज मुरली धर श्रीकृष्ण या धनुषधर द्विभुज श्रीराम के उपासक शंख चक्र, व चतुर्भुज शब्द सुन कर ही नाक भौं सिकोड़ें, और विष्णु भगवान् के नाम रूप से अपनी अरुचि प्रगट करें। यह सब आज कल वैष्णव समाज में अनन्यता का रूप हो कर सज्जन लोग क्लिष्ट कल्पना व पक्षपात का ही आरोपण कर देते हैं। परन्तु ऐसा भी उचित नहीं हैं। यहां पर यह बात नहीं है। मैं तो दोनों अर्थों की व्यवस्था को स्पष्ट करके पाठकों के सन्मुख रखना चाहता हूं, जिससे प्रसंग को देख कर सुजन वर्ग निष्पक्ष हो कर निर्णय करें कि यहां पर प्रसंगानुकूल कौन सा अर्थ ग्राह्य है।

'निज आयुध भुजचारी' का चतुर्भुज विष्णु सूचक अर्थ तो प्रसिद्ध ही है इस अर्थ में 'चारी' शब्द से संख्या वाचक चार का अर्थ लेकर 'चारों भुजाओं में निज आयुध अर्थात् शंख, चक्र गदा-पद्म इस प्रकार अर्थ करते हैं।

दूसरा अर्थ, जिससे धनुष धर, द्विभुज रूप से भगवान् का कौशल्या जी के सन्मुख प्रगट होना पाया जाता है, वह निम्न लिखित प्रकार से है।

इस अर्थ में 'चर गति भक्षणयोः' इस प्रकार धात्वर्थ से चर शब्द को गत्यर्थक मान कर चर का चलना या व्यवहार में 'प्राप्त' अर्थ लेते हैं। जैसे जलचर थलचर अर्थात् जल में चलने वाले या रहने वाले ऐसे ही 'काननचारी' वन में चलने वाले इत्यादि। इस प्रकार 'निज आयुध भुजचारी' में निज आयुध अर्थात् धनुषबाण (जो श्रीराम रूप में मुख्य आयुध है) भुजचारी अर्थात् भुजाओं में फिरता हुआ या भुजाओं में प्राप्त जैसा कि ध्यान में भी वर्णन हुआ है।

कर कमलन धनु सायक फेरत।
जिय की जरनि हरत हंसि हेरत॥

इस प्रकार अर्थ किया जाता है।

अब मोटी दृष्टि से देखने पर यद्यपि चतुर्भुज विष्णु सूचक प्रथम अर्थ ही अधिक ठीक जचता है। और यही अर्थ प्रसिद्ध है दूसरा अर्थ अधिकांश में विशेष २ उपासकों के बीच में ही प्रचलित है। और सर्व साधारण इस अर्थ को उपासकों की क्लिष्ट कल्पना मान कर इस अर्थ की उपेक्षा भी कर डालते हैं। परन्तु श्रीराम चरित मानस के

प्रकरण पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह अर्थ ऐसा उपेक्षणीय नहीं जचता-प्रत्युत यही अर्थ अधिक ग्राह्य प्रतीत होता है। और वह प्रकरण इस प्रकार है-

अवतार हेतु प्रकरण से यह बात स्पष्ट होती है कि श्रीराम चरित मानस की कथा उस कल्प की है जिसमें मनु शतरूपा-दशरथ कौशल्या हुये हैं। और मनु शतरूपा को भगवान् ने द्विभुज धनुष धर रूप से ही दर्शन दिया था। यथा-

दम्पति वचन परम प्रिय लागे।
मृदुल विनीत प्रेम रस पागे॥
भगतबछल प्रभु कृपा निधाना।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥

दोहा-नील सरोरुह नीलमणि नील नील घर श्याम।
लाजत तनु शोभा निरखि कोटि २ शत काम॥

शरद मयंक वदन छवि सींवा।
चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुण रद सुन्दर नासा।
बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥
नव अंबुज अम्बक छवि नीकी।
चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छवि हारी।
तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥
कुण्डल मकर मुकुट सिर भ्राजा।
कुटिल केश जनु मधुप समाजा॥
उर श्रीवत्स रुचिर बन माला।
पदिक हार भूषण मणि जाला॥
केहरि कंधर चारु जनेऊ।
बाहु बिभूषण सुन्दर तेऊ॥
करि कर सरिस सुभग भुज दण्डा।
कटि निषंग कर शर कोदण्डा॥

तड़ित बिनिंदक पीत पट, उदर रेख बर तीन।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भंवर छवि छीन॥
पद राजीव बरणि नहिं जाहीं।
मुनि मन मधुप बसहिं जिन माहीं॥

और इस रूप से ही भगवान ने मनु शतरूपा को वरदान भी दिया था। अब वही शतरूपा जी कौशल्या रूप से अयोध्या में प्रगट हैं। उन्हीं कौशल्या जी के सामने प्रकट हो कर भगवान् उन्हें उनके पूर्व तप व वरदान का स्मरण दिला रहे हैं। जैसा कि उपरोक्त छन्द में आगे आता है:-

'कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।'

अब ध्यान देने की बात है कि वरदान देने के समय भगवान् जिस रूप से उनके सन्मुख प्रगट थे, उसी धनुष धर द्विभुज रूप से जन्म के समय प्रकट हो करपूर्व वरदान का स्मरण दिलाना विशेष संगत प्रतीत होता है।

यह तो हुई प्रकरण की बात, अब रही यह बात कि शब्दों के देखने से दोनों अर्थों में कौन सा अर्थ स्पष्ट और कौन क्लिष्ट कल्पना युक्त है, इस विषय में भी मैं अपनी स्वतन्त्र सम्मति पाठकों के सन्मुख उपस्थित करता हूं।

१-प्रथम बात तो यह कि द्विभुज धनुष धर सूचक दूसरे अर्थ में 'भुजचारी' का सीधा अर्थ 'भुजा में फिराया हुआ' या 'भुजाओं में प्राप्त' किया जाता है। जो बिना किसी उलट फेर के सीधा अर्थ शब्दों से निकलता है-जैसे काननचारी वैसे भुजचारी। पर चतुर्भुज विष्णु रूप सूचक अर्थ में इसी 'भुज चारी' शब्द को उलट कर 'चार भुजा' किया जाता है जो वास्तव में विचार से देखा जाय, तो बोलचाल के मुहाविरे में भी सीधा अर्थ नहीं कहा जा सकता, उदाहरण के लिये जैसे-बोल चाल में दो हाथ, दो आंख, चार पांव, यही सीधी बोल

चाल है। दो हाथ दो आंख हो। पांच चार ऐसी बोल चाल को सीधा नहीं कहते। ऐसे ही चार भुजा शब्द तो सीधी बोलचाल का हो सकता है, पर 'भुज चारी' सीधा शब्द नहीं कहा जा सकता। अलबत्ता चौपाई में मात्राओं की पूर्ति व लय आदि को ठीक करने के लिये चौपाई में चार भुज का भुजचारी भी आ सकता है, पर यदि 'भुजचारी' का भुजा में फिरता हुआ या प्राप्त' अर्थ प्रसंग के अनुकूल ठीक जचता है, तो यह अर्थ ही शब्दों से निकलता हुआ सीधा अर्थ कहा जा सकता है।

२–'निज आयुध 'भुजचारी' से निज आयुध अर्थात् धनुष बाण भुजचारी अर्थात् भुजा में फिरता हुआ या प्राप्त-इस प्रकार क्रिया संयुक्त पूरा अर्थ शब्दों से ही निकल आता है कोई शब्द ऊपर से ला कर मिलाने की भी आवश्यकता नहीं रहती। पर चतुर्भुज सूचक अर्थ में निज आयुध अर्थात् 'शंख चक्र गदा पद्म भुजचारी अर्थात् चार भुजा, इस प्रकार अर्थ में कोई क्रिया भी नहीं है, और इन शब्दों से कुछ स्पष्ट अर्थ भी नहीं निकलता। शंख चक्र गदा पद्म-चार भुजा इन शब्दों से यथार्थ में स्पष्ट अर्थ तो कुछ नहीं कहा जा सकता। इस अर्थ में अर्थ को पूरा करने के लिये 'चार भुजाओं में शंख चक्र गदा पद्म धारण किये हुये' अपनी ओर से मिला कर कहने पर ही अर्थ की पूर्ति होती है। इस प्रकार से भी द्विभुज धनुषधर सूचक अर्थ ही सीधा और स्पष्ट प्रतीत होता है।

३–'निज आयुध में आयुध शब्द एक वचन में आया है। इस से भी 'शंख चक्र गदा पद्म' चार का अर्थ आयुध से लेने की अपेक्षा एक ही आयुध धनुषबाण का अर्थ लेना सीधा और स्पष्ट प्रतीत होता है। शंख चक्र, गदा, पद्म अर्थ करने के लिये एक वचन 'आयुध' शब्द को अपनी ओर से बहु वचन मान लेना पड़ता है। इससे भी द्विभुज धनुषधर सूचक अर्थ ही अधिक सीधा और स्पष्ट प्रतीत होता है।

४ चतुर्भुज विष्णु रूप सूचक अर्थ में 'भुज चारी' का चार भुजा अर्थ करके–'चारों भुजाओं में चार आयुध' इस तरह चार भुजा की ध्वनि से ही आयुध शब्द से चार आयुध शंख चक्र गदा पद्म की कल्पना करली जाती है। पर विचार करके देखा जाय तो, पद्म की गणना आयुधों में नहीं है। पद्म अलंकार मात्र है। विष्णु भगवान् के आयुधों का वर्णन जहां आया है, वहां आयुध पाँच वर्णन किये गये हैं वे पंचायुध, शंख, चक्र, गदा, नन्दक–खड्ग और शार्ङ्ग–धनुष हैं। पद्म की गणना आयुधों में नहीं है। पंचायुध स्तोत्र श्री सम्प्रदाय में प्रसिद्ध ही है। श्रीमद्भागवतादि अन्य आर्ष ग्रन्थों में भी यही बात पाई जाती है। अर्थात् आयुध शब्द के साथ में जहां कहीं इन का वर्णन आया है, वहां शंख, चक्र, गदा तीन शब्द ही आये हैं। पद्म शब्द आयुध के साथ में प्रायः कहीं नहीं पाया जाता इस प्रकार 'निज आयुध भुजचारी का 'चार भुजाओं में चार आयुध' अर्थ भी ठीक नहीं जचता, क्योंकि आयुध तो तीन हाथों में ही हैं, पद्म की गणना आयुधों में नहीं है।

उदाहरण के लिये श्रीमद्भागवत् में भगवान् श्री कृष्ण के आविर्भाव समय का श्लोक ही देख सकते हैं। वहाँ के प्रकरण में भगवान् का चतुर्भुज रूप से प्रकट होना ही बिलकुल स्पष्ट है, द्विभुज रूप से प्रकट होने का वहां पर कोई प्रसंग नहीं है। पर आयुध शब्द के साथ पद्म का वर्णन वहां नहीं आया। यथा–

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं,
चतुर्भुजं शंख गदाद्युदायुधम्।

श्रीवत्स लक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं।
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
श्रीमद्भागवत स्कंध १० पूर्वार्ध

इस श्लोक में चार भुजा को स्पष्ट करने के लिये 'चतुर्भुज' शब्द बिलकुल स्पष्ट है इस शब्द का 'भुजचारी' की तरह कोई दूसरा स्पष्ट अर्थ हो ही नहीं सकता। पर 'आयुध शब्द के साथ शंख, गदा, अर्च्युद (चक्र) तीन का ही नाम आया है। 'पद्म का बोध करने के लिये चतुर्भुज शब्द ही पर्याप्त है। अर्थात् भुजाचार हैं तो चौथे हाथ में पद्म' है ही। पर आयुध शब्द के साथ में पद्म का शब्द नहीं आया है।

इस प्रकार निज आयुध भुजचारी' का 'चार भुजाओं में चार आयुध इस प्रकार अर्थ भी ठीक नहीं जचता। क्योंकि आयुध तो तीन ही हैं। चौथे पद्म की गणना आयुधों में नहीं है।

इस प्रकार गंभीर दृष्टि से देख कर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चतुर्भुज विष्णु रूप सूचक अर्थ भी उतना सीधा और स्पष्ट नहीं है जैसा सर्व साधारण में मान लिया जाता है। प्रत्युत श्रीराम चरित मानस के पूर्वा-पर प्रसंग पर विचार करने पर दूसरा द्विभुज धनुष धर सूचक अर्थ ही प्रसंगानुकूल अधिक संगत तथा चतुर्भुज विष्णु रूप सूचक प्रथम अर्थ की अपेक्षा अधिक स्पष्ट भी प्रतीत होता है। इस प्रकार 'निज आयुध भुज चारी' का 'निज आयुध अर्थात् धनुषबाण भुजा में फिरता हुआ या प्राप्त अर्थ स्वीकार कर लेने पर 'श्रीराम चरित मानस की एक कला के अवतार का शुद्ध चरित्र मानने में इस प्रसंग से जो कठिनाई व पूर्वापर विरोध सा प्रतीत होता है उसकी भी गुंजाइश नहीं रह जाती। क्योंकि श्रीराम चरित मानस के दशरथ कौशल्या पूर्व के मनु शतरूपा हैं। जिनको द्विभुज धनुषधर रूप से प्रकट हो कर भगवान् ने वरदान दिया था। अतएव अवतार के अवसर पर उसी द्विभुज धनुष धर रूप से प्रकट होकर अपना पूर्व परिचय देना विशेष संगत प्रतीत होता है।

यद्यपि चतुर्भुज सूचक अर्थ को भी ठीक मानने पर शंका का समाधान तो हो ही जाता है जैसा कि 'श्रीराम चरित मानस की कथा किस कल्प की' शीर्षक लेख में स्पष्ट किया गया है। पर प्रसंगानुकूल द्विभुज धनुष धर सूचक अर्थ को स्वीकार कर लेने पर उस शंका के उठने की ही गुंजाइश नहीं रहती। 'निज आयुध भुजचारी' के दोनों अर्थों की विस्तृत व्यवस्था पाठक सज्जनों के सन्मुख उपस्थित की गई। अब दोनों अर्थों पर विचार कर के दो अर्थों में जिसे ठीक समझें ग्रहण करें। मेरे विचार से तो द्विभुज धनुष धर सूचक दूसरा अर्थ ही प्रसंगानुकूल प्रतीत होता है। और इस अर्थ से श्रीराम चरित मानस के पूर्वापर के समन्वय करने में भी बहुत कुछ सहायता मिलती है।

* भारत को गिरते देखो *

(रचयित्री श्रीमती व्रज कुमारी 'प्रभाकर' आश्रम]

हे अच्युत पापानल से अब भारत को जलते देखो ॥
भाग्य भास्कर मन्द द्युति नव पश्चिम से ढलते देखो ॥ १ ॥
दीन हीन बल क्षीण धरा अब दस्यु से दलते देखो ॥
क्रूर विधर्मी दुष्ट जनों के कलेवर मांस पलते देखो ॥ २ ॥
सरल शील व्रतधारी के उर विधर्मी से छलते देखो ॥
अन्ध परम्परा के कुकृत्य का नग्न नृत्य नचते देखो ॥ ३ ॥
ईति भीति से कृषक जनों के श्रम सीकर ढलते देखो ॥
तव वंशज अब हे यदुनन्दन ! तृण २ पै बिलखते देखो ॥ ४ ॥
परिभवयुत विधुरा दृगसे शोणित नद बहते देखो ॥
अल्प वयस्का नव युवतिन के सुहाग सिन्दूर पुछते देखो ॥ ५ ॥
कालप्रताड़ित अन्न हीन जन को क्रन्दन करते देखो ॥
भूख प्यास से आकुल गउ गण को दर २ भ्रमते देखो ॥ ६ ॥
धूर्त छली के छल प्रपंच का नित व्यापार चलते देखो ॥
तव प्रतीति आश्रित जनको 'व्रज' मनही मन झुरते देखो ॥ ७ ॥
उपकृतिरत प्रेमी पतंग तव खातर अब मरते देखो ॥
देखो ! देखो ! ! हे यदुपति अब भारत को गिरते देखो ॥ ८ ॥

एक चमत्कारी बेनज़ीर मुकदमा ।

[ले० भक्तरत्न मथुरा प्रसाद जी]

ब इजलास जनाब व्रजराज मनमोहन साहब मजिस्ट्रेट बहादुर दर्जे अव्वल-

नाम मुद्दैया } श्रीवृन्दावनेश्वरी राधारानी-
मुस्तगीसा }

नाम मुल्ज़िम }-व्रजराज नयन-

जुर्म—इकदाम कत्ले अमद-

[मज़मून अरज़ी इस्तगासा]

मुल्ज़िमान बड़े मशहूर चालाक और लुटेरा पेशा हैं उन्होंने सैन की सैफ़ चला कर मुस्तगीसा को सख्त ज़र्ब पहुंचाई जिससे उम्मेद ज़िन्दगी की नहीं रही। मुल्ज़िमान को जो कि आदी मुजरिम और खूनी हैं सज़ा दी जावेः-

हुक्म हुआ कि बयान मुस्तगीस कलंबन्द

हो–मुस्तगीसा ने ललिताजी को वकील करके वकालतनामा पेश किया–

इज़हार हलफ़ी वकीले मुस्तगीसा–

परसों के रोज़ मुस्तगीसा अपने दर्वाज़े पर खड़ी थी–वहाँ टेढ़ी ज़ुल्फों वाले छड़ी हाथ में लिये हुए ब्रजराज बिहारी आ निकले। उनके नेत्र अति चंचल चपल और मशहूर लुटेरे हैं। भारी चतुर और ज़ालिम हैं। उन्होंने अचानक सैन सैफ़ चला कर मेरी मुवक्किला को ज़ख़्मी कर दिया। उस वक़्त से वो अचेत पड़ी है खाना पीना सोना सब बन्द है कभी चेत हो जाता है तो उठ कर हाय प्यारे यह शब्द कहके फिर बेसुध हो कर गिर जाती है। कोई उपाय असर नहीं करता। गवाह इस्तगासा विशाखा आदि मौजूद हैं जिन्होंने आंखों से वार्दात देखी है :

बयान गवाह इस्तग़ासा

नाम विशाखा-कौम ग्वालनी, सकने बरसाना उम्र १६ साल-पेशा सेवा–(बहलफ़) परसों श्री बनमाली जी जिनके मुख पर ज़ुल्फें काली घुंघराली गुंजों की माला निराली छब वाली थी सीस पर मोर मुकट ओढ़े पीतपट, अटपटे नटवर वेष से आनिकले उनके चपल तीखे नैन छिनैया सुख चैन उपजाने वाले मैन मुस्तगीसा पर दौड़ पड़े और पैंतरे बदल कर तिरछे हो कर उन्होंने सैन की शमशेर चलाई, मुद्दईया घायल हो कर घर चली आई मुझे देख कर मुल्ज़िम कुछ रुक गये, अगर मैं न होती तो कत्ल होने में कोई शक न था————————दस्खत गवाह।

हुकम हुआ कि मुल्ज़िमान को तलब किया जावे मुक़दमा कल पेश हो।

बयान मुल्ज़मीन (नज्म)

प्यारी ने निज तन पानिप में इक दिन हमें डुबायो।
भये ग़रक घबराई तबियत कतहूं थाह न पायो॥
कल्पलता सुक सुखिया कहि पुनिता में छन भर झूले।
तहं तें फिर कच सघन विपिन में हाय जाय हम भूले॥
अति अन्धियारी तहां डरारी भारी कुहूम तारी।
तामें प्यारी बरबस वारी दुख दीनो बनवारी॥
दैव जोग तहां सीस फूल मणि सूरज जोत पसारो।
सघन विपनता अन्धियारी तें सोई मोय उबारो॥
यही गोस हमने हिय धर के उन पर सैन चलाई।
तनक हि घाव लगो प्यारी कं पूरी बैठ न पाई॥
जो चाहो सो हुकम देहु अब सांचो सब कह दीनो।
जो कुछ गुज़री हाल श्याम जू नेक दुराव न कीनो॥

(फ़र्द क़रारदादे जुर्म)

बयान मुल्ज़मीन से ज़ाहिर है कि वे मुर्तकिब जुर्म के हुए अगर मुस्तगीसा के किसी लवाहिक़ की तरफ़ से उन पर कुछ ज़्यादती हुई तो वाजिब था कि खुद राधे रानी के हुज़ूर में जाकर अर्ज़ हाल करते–बतौर खुद उन पर हमला करने का कोई मतलब न था। मुल्ज़मीन से दरियाफ़्त किया गया तो वे और कोई सफाई देना नहीं चाहते इसलिये मुक़दमा तजवीज़ तलब है। लिहाजा तजवीज की जाती है।

तज्वीज़ (नज्म़)

कवित्त

आज पेश हो कर मिसल सब देखी गई।
सब वजह सबूत आगे मिस्ल खाने में॥
मुद्दा इलेहम पेशक मुजरिम क़रार पावें।
बाकी नहीं राखी सैन सैफ़ के चलाने में॥
कहैं श्याम सेवक यह इसी लिये हुकम हुआ।
रूप दाद हासिला मिसल के तो पाने में॥

छूटने न देवें वे उनके नैन खूनियों को।
कैद कर राखें निज नैन कैद खाने में॥

चूंकि मुद्दायलेहुमा जुर्म से इकबाली हैं उन्होंने सैन सैफ़ चलाकर मुस्तगीसा को मजरूह किया। लिहाजा हुक्म है कि राधे रानी के निज नैन कैदखाने में यह हमेशा कैद रहें कभी छूटने न पावें।

दस्तखत-हाकिम मोहन प्यारे के
तारीख फैसला-
हुक्म सुना दिया-

हरिनाम ही सार है

[ले० श्री महात्मा राम भगवद्भक्ति आश्रम]

जिस पारब्रह्म की कृपा से छत्तीस ३६ प्रकार के अमृतमय भोजन हमें खाने को मिलते हैं उस ठाकुर को सदा मन में रखना चाहिये। जिसकी कृपा से नाना प्रकार की सुगन्धें शरीर में लगाते हैं। हे मन! उसका सुमरन कर जिससे तेरी परमगति हो। जिसकी कृपा से उत्तम महलों में सुख पूर्वक निवास करते हो उस परमेश्वर का सदा मन में ध्यान करो। जिसकी कृपा से तुम सर्व प्रकार के सुखों को भोगते हो उसके नाम को आठों पहर सुमिरन करो। जिसकी कृपा से सर्व प्रकार के ऐश व आराम के भोग भोगते हो उसका सदा ध्यान करो क्योंकि वह ध्यान करने योग्य है। जिसके प्रसाद से अनेक प्रकार के सुन्दर २ वस्त्रों को तथा आभूषणों को धारण करता है, हे मूरख ऐसे प्रभु को त्याग कर और किस पर लुभा रहा है। जिसके प्रसाद से तुम सुख की सेज पर सोते हो हे मन ? उसका जस आठों पहर गावो। जिसकी कृपा से तुझे सब कोई मानता है उसके जस को तूं मुख से क्यों नहीं गाता। जिसके प्रसाद से तूं अपने धर्म को पालन करता है हे मन ! उस पारब्रह्म का सदा ध्यान कर। उसके नाम का जप करने से ही तेरा उसकी दरगाह में मान होगा। वही दरगाह तेरा अपना घर है। नाम के प्रताप से तेरी वहां पति रहेगी। जिसकी कृपा से तेरी काया निरोग रहती है उस राम के नाम में लव लगा जो सदा का सनेही है। जिसके प्रसाद से तेरा ओला (परदा) बना रहता है हे मन ! उस हरि के नाम को जप। जिसकी कृपा से तेरे सब छिद्र ढके जाते हैं उस प्रभु की शरण ले। जिसकी कृपा से तेरी सब से रक्षा होती है उस उच्च प्रभु को श्वास श्वास सुमिरन कर। जिसकी कृपा से तुझे यह दुर्लभ देह मिली है उसी की भक्ति कर। जिसकी कृपा से सब वस्त्राभूषणों को पहरता है उसके सुमिरन करने में आलस्य क्यों करना चाहिये। जिसके प्रसाद से बाग बगीचे धन और पृथिवी प्राप्त है उस प्रभू को सदा मन में पिरो कर रक्खो। जिसने तुझे बनाया है उसको उठते बैठते हर समय ध्यान में रख। उसका ध्यान कर जो एक है, तथा अलेख है, जो किसी के लखने में नहीं आता। वही तेरी इस लोक में और परलोक में लाज रखनेवाला है। जिसकी कृपा से तू अनेक प्रकार का दान पुण्य करता है उस परमेश्वर का आठों पहर ध्यान कर।

जिसके प्रसाद से तू बड़े २ आचार व्यवहार करता है उसका नाम सांस २ में चिन्तन कर जिसके प्रसाद से तेरा सुन्दर रूप है उस प्रभु को निरन्तर सुमिरन कर। जिसके प्रसाद से तेरी उत्तम जाति है उसका सदा रात दिन सुमिरन कर। जिसके प्रसाद से तू आंखों से देखता है, कानों से सुनता है, मुख से अमृत वाणी बोलता है, जिसके प्रसाद से सर्व सुख भोगता है, जिसके प्रसाद से पावों से चलता है, हाथों से काम करता है, तथा सर्व प्रकार से फूलता फलता है, और जिसके प्रसाद से तू परम गति को पाता है, उस प्रभु को हे मन! तू क्यों भुलाता है। जिसके प्रसाद से तू समस्त संसार में प्रगट होता है, तथा जिस प्रभु के प्रसाद से तेरा दुनियां में प्रताप छा रहा है, हे मूढ़ मन! तू उस प्रभु के नाम को निरन्तर जप, कदाचित् भी उसके नाम को मत विसार।

जिसके प्रसाद से तेरे सकल कारज पूर्ण होते हैं उसको तू सदा अपने पास ही जान जिसके प्रसाद से तू सच्चिदानन्द स्वरूप पारब्रह्म के दर्शन करता है हे मन! तू उससे प्रेम कर। जिसके प्रसाद से सब प्राणी शुभ गति पाते हैं उस प्रभु का नाम सब को ही जपना चाहिये।

परन्तु प्रभु का नाम भी तभी जपा जाता है जब प्रभु अपनी कृपा करते हैं। जब प्रभु का अनुग्रह होता है तब हृदय कमल में आत्मा का विकाश होता है। जिस पर प्रभु प्रसन्न होते हैं उसके हृदय में उनका निवास होता है। प्रभु की दया से ही उत्तम बुद्धि होती है। अतः प्रभु की महिमा अनन्त है। वह सब जगत् का कारण रूप है। अपने आप कोई कुछ नहीं कर सकता, प्रभु ने जिसको जहां लगाया है वह वहीं लग रहा है।

कन्या गुरुकुल।

[ले० श्री महात्मा कृष्णानन्द सरस्वती]

भारत वर्ष में स्त्री शिक्षा के लिये जो ऊंचे दरजे की संस्थाएं हैं वे प्रायः मैंने सबही देखी हैं। कन्या गुरुकुल दिल्ली, कन्या महाविद्यालय जालन्धर, शान्तिनिकेतन का महिला विद्यालय, और पुना में प्रोफेसर करवे का कालिज इत्यादि। इनही की भान्ति भगवद्भक्ति आश्रम रामपुरा में एक कन्या गुरुकुल है। यह विद्यालय भी अपने ढंग का एक ही है। इस विद्यालय में शिक्षा को सर्वांङ्ग पूर्व बनाने का उद्योग हो रहा है। इस विद्यालय में शिक्षा देने का जो उद्योग होरहा है वह इस आदर्श को लिये हुये है। कि स्त्री जीवन के विकाश के साथ २ महिलाओं में मनुष्य जीवन भी पूर्ण विकसित होजाना चाहिए। यहां जीवन को प्राकृत, स्वतंत्र, सरल, उपयोगी और उद्योगशील बनाने के समस्त साधन जुटाए गए हैं।

स्थान—विद्यालय इतनी विस्तृत भूमि में बनाया गया है कि भारत वर्ष में शायद ही कोई विश्व विद्यालय इतनी वृहत् भूमि में बना हो। वृक्ष और सुन्दर लताएं लगाकर भूमि ऐसी रम-

ठीक और चिता कर्षक बनाई गई है कि दर्शक एकबार उस भूमि में प्रवेश करके निकलना नहीं चाहता. समस्त भूमि में साफ सड़कें बनी हैं जिनके दोनों तरफ छायादार-पद वृक्ष लगाए गए हैं। कन्याएं आश्रम भूमि में ही इन सड़कों पर कई मील तक घूम सकती हैं। समस्त स्थान निर्विघ्न और सुरक्षित है, किसी प्रकार का भय उपस्थित नहीं है। खेलने के लिए बड़ा अच्छा मैदान है। वायु बड़ा स्वच्छ और जल बड़ा मधुर है। स्नान करने और तैरने के लिए बड़ा सुन्दर तालाब है।

रक्षा—कन्याओं की रक्षा का प्रबन्ध स्वाभाविक है। कुछ वानप्रस्थी सज्जन हैं जिनकी सहधर्मणी और कन्याएं भी उनके साथ हैं और कुछ विधवाएं हैं जिन्होंने अपना जीवन धार्मिक सेवा के लिए अर्पण कर दिया है, यह सब मिल कर इनकी रक्षा व सेवा करती हैं।

धार्मिक प्रभाव—यहां का वातावरण बड़ा निर्मल व शुद्ध है। यहां त्यागी, तपस्वी और ईश्वर भक्तों का समूह है। भगवद्भक्ति मुख्य लक्ष्य है। भजन, कीर्तन नित्य ही होता है। ब्रह्मचर्य प्रणाली यहां आदर्श है। शुद्ध सात्विक भोजन, शीतल जल से स्नान, व्यायाम, चित्त का अनावकाश, सेवा भाव और उद्योग शीलता मुख्य हैं।

उद्योग—कन्याएं अपना भोजनादि का सब काम आप करती हैं, नौकर कोई नहीं है छोटी बालिकाओं को बड़ी कन्याएं और माताएं सहायता देती हैं। नियत समय पर सब मिल कर अपनी पुष्प वाटिकाएं लगाती हैं, वृक्षों में पानी सींचती हैं और उनकी घास निकालती हैं। प्रत्येक कन्या को यह खयाल रहता है कि मेरी पुष्प वाटिका किसी अन्य से कम न रहे। अपने कपड़े आप सीती हैं। कपड़े बहुत सादा पहनती हैं।

नियन्त्रण—शासन बड़े प्रेम का है। प्रत्येक काम समझा कर कराया जाता है दण्ड (का विधान नहीं है। और सब से उत्तम बात यह है कि शासन करने वाले प्रत्येक काम को स्वयं करते हैं।

संगीत—सब ही कन्याएं गाना और हारमोनियम सितार आदि बजाना सीख जाती हैं उसका मुख्य कारण यहां का नित्य का सत्संग है। सत्संग में सब को भजन गाने होते हैं इससे सब चाव से गायन विद्या सीख जाती हैं।

पढ़ाई—८ वर्ष की बालिका से लेकर ६० वर्ष की बुढ़िया तक के लिये पढ़ाई का प्रबन्ध है। आरम्भ में सब को प्राइमरी क्लासों की शिक्षा दी जाती है. उसके पश्चात् अपनी २ रुचि और उपयोगिता के अनुसार पृथक् २ परीक्षाएं ले सकती हैं। जो मिडल का कोर्स लेना चाहें वे मिडिल की परीक्षा की पढ़ाई में लग जाती हैं, जो हिन्दी की विशेष योग्यता प्राप्त करना चाहें वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रवेशिका, विनोदिनी विदुषी, सरस्वती आदि परीक्षाएं ले सकती हैं, जो पंजाब की रत्न, भूषण, प्रभाकर लेना चाहें वे उस कोर्स में दाखिल हो जाती हैं, जो संस्कृत पढ़ना चाहें वे प्राज्ञ, विशारद और शास्त्री का कोर्स ले सकती हैं। सब परीक्षाओं के केन्द्र आश्रम में ही हैं, कन्याओं को बाहर नहीं जाना पड़ता।

खर्च—मासिक खर्च केवल ६) रुपया है। जिसमें से १) मासिक कपड़े का खर्च है। भोजन खर्च, बोर्डिंग की फीस आदि सब मिल कर ५) रुपये हैं। भोजन में दाल, शाक, घी और प्रति लड़की पाव भर दूध शामिल है। सप्ताह में एक बार खीरादि विशेष भोजन बनता है।

यहां की लड़कियों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है उसका मुख्य कारण सादा और परिश्रमी जीवन और यहां का जल वायु है।

* मोहिनी-मूर्ति *

(रचयिता पं० बाबूलाल भार्गव 'साहित्यरत्न')

कितनों के ओठों पर इठलाती देखी है मृदु मुसकान।
कितनों के मृदु कंठ कंठ की सुनी सुरीली मंजुल तान॥
किन्तु न जाने क्यों ? सखि ! मुझको सरस न लगते ये लवलेश।
जब से लख पाया मैंने उस नटवर मन मोहन का वेश॥

खुदाई हुक्म (ईश्वराज्ञा)

[ले० श्री महात्मा महानन्द आनन्दकंद भगवद्भक्ति आश्रम]

१. इस तमाम [समस्त] कायनात [सृष्टि] के (जो इन्सानी हवासे ख़मसा और अक्ली ख़याल के दायरे में समा सकती है) ज़हूर (प्रगट) होने से पहले मैं मौजूद था।

२. मैं अज़ली 'अनादी' अबदी [शाश्वत) निराकार लामहदूद [असीम] लतीफतरीन (सुक्ष्मातिसूक्ष्म) लाज़वाल (अव्यय) लाफानी (अविनाशी) और सर्व शक्तिमान् था और अब भी हूं आगे भी रहूंगा।

३. मैंने अपनी बेपायान-अनन्त शक्ति से ज़मीं और आस्मां पैदा किये उनमें मुख़्तलिफ किस्म (नाना प्रकार) के गुण पैदा किये और इन्सान को अपने हमशक्ल (अनुरूप) बनाकर अक्ल के नूर से मुनव्वर (प्रकाशित) करके अशर फुलल मख़्लूकात (सर्वोत्तम) बनाया।

४. मैं इस कुल कायनात के ज़र्रे २ के अन्दर मौजूद होता हुआ उससे बाहर हर तरफ ऊपर नीचे लाइन्तिहा (सीमा) में मौजूद हूं। क़ायनात के अन्दर इस तरह छुपा हूं जैसे मेंहदी के अन्दर रंग और फूल में खुशबू।

५. मैं तमाम वस्फ (गुण) और आकार रखता हुआ लावस्फ (निर्गुण) और बे आकार हूं, क्योंकि मैं कादरे मुतलिक़ (सर्वशक्तिमान्) इन्सानी आहते अक्ल (प्रज्ञा प्राचीर) से दूर और बालातर [उत्कृष्ट] हूं।

६. दुनियां के तमाम मज़ाहब (मत मतान्तर) और मज़हबी कवानीन (धर्मग्रंथ) मुझसे पैदा हुये रामकृष्ण ईसा और महोम्मद वगैरह के जिस्ममें मैं गैर मामूली कुदरत (असाधारणशक्ति) के साथ दाखिल [प्रविष्ट] था।

७. वेद, इंजील, कुरान, और दूसरे मज़हब के धर्मग्रन्थों को पैदा करने वाला मैं ही हूं। और उनमें सब मेरे ही हुक्म हैं।

८. दुनियां के पैदा होने से अबतक बे शुमार [असंख्य] बड़ी नबी ऋषि महात्माओं और अव-

तारों में मेरी ही रूह [आत्मा] काम कर रही है। और आगे भी करेगी।

९. मेरी ही अपार शक्ति की ताक़त से अब जल्दी ही निष्कलंक ईसा और इमाम महदी आदि का ज़हूर [आविर्भाव] होने वाला है। जो दुनियां के गुमराह [पथ भ्रान्त] लोगों को अपनी खास ताकत के साथ राहेरास्त (सत्पथ) दिखायेगा। उसका एक हाथ मोहब्बत भरी हुई गोद में लेने के लिये फैला हुआ होगा। और दूसरे हाथ में तलवार होगी जो नाना प्रकार के रंग रूप में होगी। इस तलवार का वार वह लोगों पर इस तरह के मोहब्बत भरे दिल से करेगा जिसतरह कि एक नेक नीयत डाक्टर रोगी के ओपरेशन करने के लिये अपना चाकू चलाना शुरू कर देता है।

१०. मैं मोहब्बते कामिल हूं, इश्क़ हक़ीक़ी हूं, प्रेम भक्ती हूं। मैं हरेक इन्सान के दिलमें हरवक्त बसेरा रखता हूं। लेकिन उन लोगों के लिये जो मुझसे कुर्बत (सामीप्य) और मुहब्बत नहीं रखते दूर हूं।

११. ज्यूं २ इन्सान चाह वह किसी क़ौम मज़हब और मिल्लत [सोसाइटी] से ताल्लुक रखता हो ग़रीब से अमीर प्रजा से राजा तक मुझसे मोहब्बत तोड़कर दुनयवी फानी [संसारी नश्वर] चीज़ों में दिल लगालेता है उनसे भी मैं दूर रहता हूं। वह भी मेरे सर चश्मे (अमृत सरोवर) हक़ूक़ी शान्ति और आनन्द से दूर होकर रंज और मुसीबत में मुबतला (फंसा) होता रहता है।

१२. हरेक इन्सान मुझसे किस क़द्र नज़दीक या दूर है उस पैमाने से ज़ाहिर होगा जिस क़दर कि उसमें हक़ीक़ी मुहब्बत है। हक़ीक़ी मुहब्बत के दाखिल होजाने पर मुझमें और उसमें कोई फ़र्क़ बाकी नहीं रहता।

१३. मैं चूंकि प्रेम रूप हूं हरवक्त सबसे मुहब्बत रखता हूं। लेकिन उनके ज़्यादा नज़दीक होजाता हूं जो मोहब्बत के द्वारा मुझसे नज़दीक होते हैं। मुझसे दुनयवी लोगों का रिश्ता सिवाय मुहब्बत के कुछ नहीं है। मेरे दरबार में अमीर ग़रीब राजा प्रजा देशी विदेशी पापी धर्मात्मा छोटे बड़े सबके लिये एकही दरवाज़ा है। लेकिन वह बिला हक़ीक़ी मुहब्बत के नहीं खुलता।

१४. हरेक इन्सान मेरे पास पहुंचने के लिये हरवक्त चलता रहता है क्योंकि हक़ीक़ी शान्ति का ख़ज़ाना मैंही हूं जिसको कि हरेक तलाश करता है। लेकिन वह ग़लत रास्ता चलने से मुझ तक नहीं पहुंच सकता।

१५. प्रायः इन्सान ने मेरी तरफ से मुंह फेरकर दुनियां की रंग बिरंगी और दिल फरेब (मनोरंजन) पदार्थों की तरफ जाना शुरू कररक्खा है। और आये दिन मुझसे दूर होता चला जाता है। दुःख और मुसीबत के कूये में गिरता जाता है। क्योंकि हक़ीक़ी शान्ति उनमें नहीं। हक़ीक़ी शान्ति मुझ में है, क्योंकि मैं मुहब्बत हक़ीक़ी हूं। और बिना मुहब्बत हक़ीक़ी शान्ति सुख कहां।

१६. सवाल पैदा होता है कि हक़ीक़ी प्रेम किस तरह पैदा होता है। उसका यह जवाब है कि खुदी का तर्क करदे। जो इन्सान को दुःख और मुसीबतों की तरफ लेजा रही है।

१७. जब इन्सान खुदी को बिलकुल छोड़कर बेखुद होजाता है। तो ऐसे मुहब्बत के सरचश्मे में दाखिल होता है कि जहां कोई मुसीबत पास नहीं फटकती।

१८. खुदी के हथियार यह हैं:—तकब्बुर, (गर्व) कज़ब्बयानी [मिथ्या चापलूसी] खुदसरी [बड़ाई] रंज, मुसीबत, दुश्मनी हिर्स, फरेब

(लोभ) शहवत, (इच्छा) आलस्य और मौत। बेखुदी के हथियार यह हैं:- प्रेम, इन्कसारी (नम्रता) रास्तगोई. (सत्यता) सफाई. दिल देमगी, खुशी, शान्ति दोस्ती, सन्तोष, पाकीज़गी (पवित्रता) ज़ब्त [तितिक्षा] चुस्ती, जीवन।

१६. खुदी से इन्सान फानी नश्वर चीज़ों के बोझ से दब जाता है और बेखुदी से फानी चीज़ों पर कुदरते कामिल (पूर्ण शक्ति) रखता है।

२०. कौन २ चीज़ गैर फानी है ? सिर्फ एक खुदा। कौन २ चीज फानी हैं ? सिवा खुदा के और सब॥

२१. हरेक इन्सान बज़ाते खुद मुतलकुल इन आन [पूर्ण स्वतंत्र] और चक्रवर्ती राजा है। उसके पास बेइन्तिहा (अनन्त) और लामहदूद (असीम) हर किस्म का सामान और ताकत मौजूद है। सुख और शान्ति उसका हकीकी खजाना है। लेकिन वह खुदी के फेर में आकर मुहताज सायल भिखारी मुफलिस (निर्धन) शक्तिहीन दुःखी और गुलाम बना हुआ है।

२२. खुदी कैसे दूर हो ? बेखुद की सोहबत से उसके उपदेश से उसकी गुलामी करने से उसपर सब कुछ कुर्बान करने से और किसी बेखुद के लुत्फ कर्म: [सद्गुरु की कृपा] से।

२३. खुदी के पैरवों [अनुगामियों] से कोई देश कोई शहर कोई गांव खाली नज़र नहीं आता प्राय: सरज़मी खुदी के पैरों से भरी हुई है। यही सबब है कि सच्ची मुहब्बत दुनियां में नहीं रही और इसी वजह से सारी दुनियां रंग बिरंग के दुःखों में फंस रही है।

२४. क्या दुनियाँ में कोई बेखुद नहीं है ? बेखुद हैं पर बहुत कम परन्तु कोशिश और मेहनत करने से हरेक आदमी यह दर्जा हांसिल कर सकता है। क्योंकि यह बेखुदी हरेक के दिलमें गुप्त मौजूद है। लेकिन वह उससे बहुत दूर निकल गया है।

२५. यह ईश्वराज्ञा भक्ति पत्र में छपने के लिये भेजी जाती है जो प्रत्येक मनुष्य के लिये चाहे वह किसी मत मतान्तर व देश से सम्बन्ध रखता हो सबके लिये हितकारी है और इसी के द्वारा प्रत्येक मनुष्य आयन्दा खतर नाक (भयंकर) ज़माने से बचकर भगवान् के समीप होकर सुख और शान्ति पा सकेगा क्योंकि प्रलय अब नज़दीक है।

अपूर्ण

योग-साधन।

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी सरस्वती)

८३०. जिस प्रकार बुदबुद (बुलबुला) फूटने के पश्चात् समुद्र से मिल कर एक रूप हो जाता है, जिस प्रकार नदी समुद्र में अपना जल डालने के पश्चात् उसीका रूप बन जाती है उसी प्रकार जिस महान पुरुष ने अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है उसका मन नाश हो जाने पर वह ब्रह्म रूप बन जाता है।

८३१. संसार में कितनी ही प्रकार के भय हैं। एक मनुष्य लड़ाई के अवसर पर तोपों के मुंह में अपनी जान झोंकने से भयभीत नहीं होता, दूसरा

मनुष्य जंगल में शेर का शिकार करते समय भय भीत नहीं होता, तीसरा मनुष्य ओपरेशन करते समय डाक्टर के चाकू से भयभीत नहीं होता और बिना क्लोरा फार्म के ओपरेशन कराने के लिए तय्यार रहता है परन्तु यह तीनों ही मनुष्य जनता के लोकापवाद से डर सकते हैं।

८३२. जब तुम्हारे वायु गोला का दर्द हो जावे या कोई बड़ा फोड़ा हो जावे तो बड़ी पीड़ा हो जाती है परन्तु गाढ़ निद्रा के समय तुम को कोई तकलीफ नहीं होती। जब तुम क्लोरोफार्म सूंघ लेते हो उस समय भी तुमको कोई पीड़ा अनुभव नहीं होती, जिस समय मन का शरीर से सम्बन्ध होता है उसी समय मनुष्य पीड़ा का अनुभव करता है। जब तुम मन का शरीर से पृथक् सम्बन्ध कर लोगे उसी समय तुमको किसी प्रकार की पीड़ा नहीं रहेगी। कष्ट का सम्बन्ध मन से है आत्मा तो आनन्द स्वरूप है। यदि तुम अपने मन को शरीर से और सांसारिक पदार्थों से खींच लो और इसको आत्मा पर लगादो जो कि निरन्तर अभ्यास द्वारा सम्भव है, उस अवस्था में तुम्हारे समस्त दुःखों का नाश हो जावेगा। एक मात्र ध्यान द्वारा ही समस्त दुःखों की निवृति हो सकती है इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है।

८३३. घट के नाश होने पर घटाकाश मठाकाश का रूप धारण करलेता है। इसी प्रकार उपाधि के नाश होने पर जीव ब्रह्म का रूप धारण करलेता है।

८३४. यदि तुम शान्ति और शास्वत जीवन की अभिलाषा रखते हो तो सच्चे और पक्षपात रहित बनो। स्पष्ट वक्ता बनो, इन्द्रियों को और मन को वश में रक्खो, किसी का दिल मत दुखाओ, सब पर दया करो, ब्रह्मचर्य्य का पालन करो और सादगी व सन्तोष का जीवन व्यतीत करो। सत्संग करो, साधु महात्माओं की सेवा करो, दान करो, क्षमा धारण करो और क्रोध को जीतो, धार्मिक पुस्तकें पढ़ो, जप करो, कीर्तन करो, ध्यान करो, गुरु की सेवा श्रद्धा और भक्ति से करो।

८३५. जब जिज्ञासु को विरह का सन्ताप होता है तो वह बुरी तरह रोता है। उसकी आखें आसुओं से भर जाती हैं, उसके कपड़े आसुओं की झड़ी से गीले हो जाते हैं और वह ज़ोर २ से चिल्लाता है "मेरा प्यारा परमात्मा कहां है" "मेरा हरि कहां है ?" मैं एक क्षण के लिए भी उसकी जुदाई को सहन नहीं कर सकता।

८३६. कभी वह अपने पड़ोसी को एकटक दृष्टि से देखता है, कभी उसका शरीर पसीनों से भीगा हुआ दिखाई देता है। कभी उसकी दशा ऐसी होती है कि न तो उसे दिन के निकलने का पता होता है और न छिपने का। कभी वह बड़े ज़ोर से हरि, हरि, हरे राम हरे कृष्ण शब्दों का उच्चारण करता सुनाई देता है। कभी उसका समस्त शरीर कांपने लगता है कभी वह पृथ्वी पर लौटता पोटता दिखाई देता है, कभी वह हंसता है और कभी वह हरे गोविन्द, हरे गोपाल की ध्वनि लगाता हुआ सुनाई देता है।

८३७. कभी वह उछलता कूदता दिखाई देता है और हाथ पावों से भिन्न २ प्रकार की चेष्टाएं करता दिखाई देता है, कभी वह ऊपर को हाथ कर ज़ोर से चिल्लाता दिखाई देता है, कभी बड़े ज़ोर से रोता है। साधारण मनुष्यों के लिये इन प्रेम के मतवाले भक्तों की बात को समझना बड़ा दुष्कर है। इन प्रेमी भक्तों का चित्त भगवान् के प्रेम में विह्वल होता है। इनकी दशा समझने और कहने में नहीं आसकती। कभी २ तो ऐसा होता है कि

यह मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं और इनका स्वांस भी बन्द हो जाता है और नाड़ी की गति बन्द हो जाती है। यदि तुमको कभी नवदीप (नदिया) या वृन्दावन जाने का अवसर प्राप्त हो जाये तो वहाँ कोई २ ऐसे भक्त दृष्टि गोचर हो सकते हैं।

८३८. किसी परिवर्तन विशेष के लिए तो तुम प्रश्न कर सकते हो कि ऐसा क्यों हुआ परन्तु किसी पदार्थ के लिए यह नहीं कह सकते कि ऐसा क्यों हुआ?

८३९. संसार के लिए यह प्रश्न करना कि यह क्यों बनाया गया? यह अति प्रश्न है। यह संसार चक्र अनादि प्रवाह है, इसलिए सनातन और अनादि है। इसके लिए यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि "यह क्यों हुआ और कब हुआ? परमात्मा, प्रकृति और जीव अनादि है और इनका सम्बन्ध भी अनादि है। प्रकृति इसका सान्त अनादि कारण है और परमात्मा अनन्त अनादि कारण है।

८४०. जब कभी तुमको कोई कष्ट आवे तो दिल खोल कर परमात्मा से प्रार्थना करो और बालक की भान्ति उससे सब कुछ कहो। सोते समय भगवान् से प्रार्थना करो प्रातःकाल तुमको अवश्य उत्तर मिलेगा, सदैव निष्कपट भाव रक्खो।

८४१. हम बहुधा दूसरों की बुराई करते हैं और दूसरों में गुण देखने की अवहेलना करते हैं। प्रत्येक मनुष्य में कुछ न कुछ गुण अवश्य होता है। इस जगत् में ऐसा एक भी मनुष्य नहीं है जिसमें कुछ न कुछ गुण न हो। दूसरों के गुण देखने के स्वभाव को धारण करो।

८४२. एक नम्र व गरीब मनुष्य के चित्त में अधिक सुख व शान्ति विराजमान रहती है। नम्रता में बड़ी शक्ति है। नम्र मनुष्य कमजोर नहीं होता है।

८४३. समष्टि मन समष्टि प्राण, समष्टि आकाश और तन्मात्राएं ज्ञान के समुद्र में तैरती रहती हैं।

८४४. जब किसी मनुष्य का कष्ट असहनीय हो जाता है तो परमात्मा अपनी दया से उसको मूर्छित कर देते हैं। मनुष्य में यदि शक्ति हो तो वह समस्त दुःखों को सहन कर सकता है। शारीरिक कमजोरी और सहनशीलता की कमी में ही मनुष्य कष्ट को सहन करने में असमर्थ होजाता है।

८४५. जब सूर्य के ऊपर से बादल हट जाते हैं तो सूर्य आप ही चमकने लगता है। इसी प्रकार मनुष्य के चित्त से जब अज्ञान का पर्दा हट जाता है जिसने इसको आच्छादित कर रक्खा है तो आत्मा अपनी ज्योति में आप प्रगट हो जाता है। इसलिए आत्मज्ञान प्राप्त करके अविद्या के परदे को दूर करदेना चाहिए।

८४६. जब सूर्य उदय होता है तो अन्धकार आप नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार जब ज्ञान की प्राप्ति होती है तो समस्त मायिक पदार्थ आप ही नष्ट हो जाते हैं।

८४७. भक्ति योग में न तो विद्या की आवश्यकता है और न ही वेद ज्ञान की जरूरत है। इसमें निष्कपट और मायुक दिल की आवश्यकता है। कोई भी आदमी परमात्मा के नाम का जप कर सकता है। तुकाराम अनपढ़ किसान था वह अपने हस्ताक्षर भी नहीं कर सकता था। भक्ति और भगवान कृष्ण की दया से उसको आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। उनके बनाए हुए भजनों की पुस्तक बम्बई विश्वविद्यालय के एम. ए. के कोर्स में पढ़ाई जाती है। श्रीराम कृष्ण परहंस भी अनपढ़ थे। उन्होंने बड़े २ विद्वानों के संशय निवृत किए।

दक्षिणेश्वर मन्दिर में रहते हुए उन्होंने काली की उपासना द्वारा आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति की। तोतापुरी अद्वैतवादी उनके गुरु थे। इन दोनों सन्तों के जीवन को ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि ज्ञान का खजाना हमारे हृदय में विराजमान है और प्रत्येक मनुष्य भक्ति द्वारा इसको अपने ही हृदय में प्राप्त कर सकता है।

८४८. ध्यान के समय साधक को अपने हृदय में ज्ञान की लहरों का अनुभव होता है। तीन मास के लगातार अभ्यास द्वारा आपको भगवान कृष्ण की मूर्ति के साक्षात् दर्शन अपने हृदय ही में हो सकते हैं॥

८४९. जब तुम्हारे चित्त में कोई भ्रम उत्पन्न हो जावे तो ज्ञानी पुरुषों से परामर्श करना चाहिए और अपने अहंकार में अपने विचारों पर नहीं अड़े रहना चाहिए।

८५०. कूदने से पहले अच्छी तरह देखलो। कभी जल्दी न करो, किसी काम को करने से पहले दो तीन बार अच्छी तरह विचार करलो। जल्दी नाश का कारण होती है। शनैः और धैर्य से सफलता प्राप्त होती है।

प्राप्ति स्वीकार

१ प्रेमी भक्त—इसके लेखक कल्याण के विख्यात सम्पादक श्री हनूमान प्रसाद जी पोद्दार हैं। इसमें पांच विख्यात भक्तों की कथा है। भक्त जयदेव, रूप सनातन, यवन हरिदास जी आदि भक्तों के चरित्र बहुत सुन्दर सरल और ललित भाषा में लिखे हुये हैं। बीच २ में गीता के श्लोक भी उद्धृत किये गये हैं जिससे पुस्तक बहुत उपादेय हो गई है। तीन तिरंगे और चार सादा चित्र हैं। कागज बढ़िया छपाई सुन्दर है। पुस्तक स्त्री, पुरुष और बालक सभी के पढ़ने योग्य है मू० ।=) मात्र है। गीताप्रेस गोरखपुर।

२. योरुप की भक्त स्त्रियां—यह पुस्तक भी श्रीहनुमान प्रसाद जी पोद्दार की कलम से निकली है। यह भक्त चरित माला का नवां पुष्प है। इसमें यूरोप की चार साध्वी और सन्त स्त्रियों के चरित्र हैं। इन चरित्रों को पढ़ने से हृदय में भक्ति भाव और श्रद्धा की लहर उत्पन्न होती है। लेखन शैली इतनी रोचक है कि पुस्तक आरम्भ करके समाप्त किये बिना छोड़ने को जी नहीं करता। स्त्री, पुरुष सभी के पढ़ने योग्य है। इसमें चार सुन्दर रंगीन चित्र दिये हैं। छपाई-गीता प्रेस गोरखपुर।

श्रेय—यह मासिक पत्र है। इसका प्रकाशन श्री भजनाश्रम वृन्दावन की तरफ से होता है। इसके सम्पादक आचार्य श्री बालकृष्ण गोस्वामी हैं। इसका चौथा अङ्क हमारे सामने है। छपाई उत्तम है एक बड़ा सुन्दर तिरङ्गा चित्र है। लेख प्रायः भक्ति और वेदान्त विषय पर हैं और सब ही अच्छे हैं। आशा है कल्याण की भान्ति श्रेय भी जीवों को उस पार लगाने में सहायक होगा। हम इसका हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं श्रेय जल्दी ही लोकप्रिय हो जावेगा वार्षिक चन्दा २) मात्र है।

प्रार्थना

आनन्द सिन्धु तू है सत् चित् स्वभूः सनातन।
तू ही नितान्तनूतन, तू ही परम पुरातन ॥१॥
है विश्व रूप तू ही, त्रैलोक्य भूप तू ही।
तू ही त्रिलोकरञ्जन, तू ही निपट निरञ्जन ॥२॥
सम्मान्य धर्म तू ही कर्तव्य कर्म तू ही।
नियुक्ति मर्म तू ही, मर्मव्यथा निकन्दन ॥३॥
तेरी प्रशस्ति गाना, तेरा चरित सुनाना।
भव सिन्धु पार पाना, है तुल्य नन्दनन्दन ॥४॥
है प्रार्थना यही अब सुख शान्ति से रहें सब।
हों शान्त सब उपद्रव; सदुक्त भीति भञ्जन ॥५॥
दीर्घायु हों हमारे, राजाऽधिराज प्यारे।
अरिवर्ग नित्य हारे, हे नित्य सुख निकेतन ॥६॥
तेरी सदैव जय हो, 'क्षय' का तथैव क्षय हो।
आनन्द का उदय हो, है बस यही निवेदन ॥७॥

२

आनन्द रूप भगवन् किस भाँति तुझको पाऊं।
तेरे समीप स्वामी मैं किस तरफ से आऊं ॥टेक॥
सुख मूल मुक्ति रूपम्, मङ्गल कुशल स्वरूपम्।
घड़ियाल शंख को क्या सम्मुख तेरे बजाऊं। १॥
अनुपम परम छबीले, बिन रंग रस रंगीले।
कण्टक सखा है फुलना, क्या तेरे सिर चढ़ाऊं॥२॥
कोटानुकोटि भूमी, उस पर असंख्य प्राणी।
जगदीश अपना नम्बर, मैं कौनसा गिनाऊं ॥३॥
श्री लक्ष्मी है तेरी, निशि दिन चरण की चेरी।
तांबे का एक पैसा, मैं नाथ? क्या चढ़ाऊं ॥४॥
गंगा है तेरी दासी, सेवक है इन्द्र तेरा।
तेरे शरीर पर क्या, दो चुल्लु जल चढ़ाऊं ॥५॥
छोटे से दास तेरे, रवि चन्द्र हैं उपस्थित।
करते हैं नित उजाला, घृतदीप क्या जलाऊं॥ ६
विनती किशोर की है निशि दिन यही दयामय।
हृदय में ली हो तेरी, आँखों में मैं समाऊं ॥७॥

भजन

३

नमो २ तुलसी महारानी, नमो २ हरि की पटरानी ।टेक
जाके दरस परस अघ नासे।
महिमा वेद पुराण बखानी ॥ १ ॥
शाखा पत्र मंजरी कोमल।
श्रीपति चरण कमल लपटानी ॥ २ ॥
धनि तुलसी पूरन तप कीन्हो,
शालिगराम भई पटरानी ॥ ३ ॥
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक,
ओजत फिरें महामुनि ज्ञानी ॥ ४ ॥
छप्पन भोग धरे हरि आगे,
बिन तुलसी प्रभु एक न मानी ॥ ५ ॥]
धूप दीप नैवेद्य आरती,
पुष्पन की वर्षा बरखानी ॥ ६ ॥
प्रेम प्रीति करि हरि बश कीन्हे,
साँवरि सूरति हृदय समानी ॥ ७ ॥
मीरां के प्रभु गिरधरनागर,
भक्तिदान दीजै महारानी ॥ ८ ॥

४

हो गये श्याम दूज के चन्दा ॥ टेक ॥
मधुबन जाय भये मधुबनियां,
हम पर डारो प्रेम को फन्दा ॥ १ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
अब तो नेह परो कछु मन्दा ॥ २ ॥

REG DNo. .L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।=)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह गुटका)	,,	=)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)॥
११.	शब्द सार संग्रह	,,	=)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१३.	सारसंग्रह	,,	)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	॥)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥)
१९.	गवांक	,,	१)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।